राष्ट्रीय छात्रशक्ति

वर्ष 37 ▪ अंक 4 ▪ सितम्बर-अक्टूबर 2016 (संयुक्तांक) ▪ ₹10 ▪ पृष्ठ 36

एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता

दीनदयाल उपाध्याय की जन्मशताब्दी

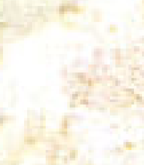

लोकधर्मी-प्रयोगधर्मी गाँधी को इस रूप में परखें

डूसू चुनाव में अभाविप की जीत

भोपाल में विराट् छात्र प्रदर्शन

प. बंगाल में विविध शैक्षणिक मुद्दों को लेकर 'कृष्ण पत्र' (Black Paper) प्रकाशित; विश्वविद्यालय के प्रश्नों को लेकर 8 स्थानों पर की गईं रैलियाँ

विश्वभारती विश्वविद्यालय में परिषद्-संघर्ष

कोलकाता विश्वविद्यालय में अभाविप की रैली

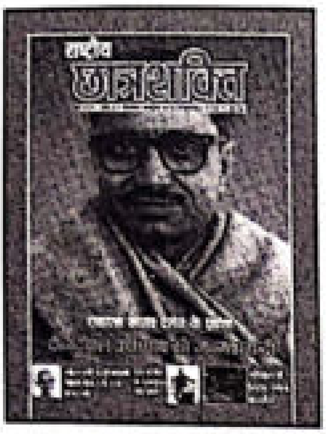

राष्ट्रीय
छात्रशक्ति

शिक्षा-क्षेत्र की प्रतिनिधि-पत्रिका

वर्ष 37, अंक 4
सितम्बर-अक्टूबर, 2016 (संयुक्तांक)

संपादक-मण्डल :
आशुतोष
संजीव कुमार सिन्हा
अवनीश सिंह
अभिषेक रंजन

संपादकीय पत्राचार :
राष्ट्रीय छात्रशक्ति
छात्रशक्ति भवन, 26 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नयी दिल्ली-110002; फोन : 011-23216298
वेबसाइट : www.abvp.org

chhatrashakti.abvp@gmail.com
w.facebook.com/chhatrashakti
www.twitter.com/chhatrashakti1

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के लिए राजकुमार शर्मा द्वारा 26, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, आई.टी.ओ. के निकट, नयी दिल्ली-110002 से प्रकाशित एवं ओशियन ट्रेडिंग कं., 132 एफ.आई.ई., पटपड़गंज इण्डस्ट्रियल एरिया, नयी दिल्ली-110092 से मुद्रित।

इस अंक में...

4 संपादकीय
5 दिल्ली विश्वविद्यालय में बजा अभाविप का डंका
6 क्या कहते हैं दिल्ली विश्वविद्यालय के विजेता प्रत्याशी...
7 दीनदयाल उपाध्याय : भारतीय समाज की शिक्षा व्यवस्था
11 मुंबई में छात्र-समस्याओं को लेकर अभाविप का प्रदर्शन
12 संस्कृति के अग्रदूत थे दीनदयाल जी
15 राजस्थान : छात्र संघ चुनाव में फिर अभाविप का दबदबा
16 दीनदयाल जी का अर्थचिन्तन
21 संघर्ष के सितारे
23 लोकधर्मी-प्रयोगधर्मी गाँधी को इसी दृष्टि से परखें
25 उत्तराखंड छात्र संघ चुनाव में विद्यार्थी परिषद् की धूम
26 एमनेस्टी-दोषियों पर कार्रवाई को लेकर अभाविप प्रतिबद्ध
27 आज अधिक प्रासंगिक हैं दीनदयाल उपाध्याय
29 छत्तीसगढ़ के विश्वविद्यालय बने विद्यार्थी परिषद् के गढ़
30 दीनदयाल उपाध्याय : उन्होंने राजनीति को नयी दिशा दी
33 इशू : क्या है 'नोटा' का औचित्य ?
35 गौरवशाली अतीत के आधार पर भव्य भविष्य गढ़नेवाले वर्तमान के शिल्पी : पं. दीनदयाल उपाध्याय
37 समस्या नहीं समाधानपरक चिन्तन की जरूरत : सुनील आंबेकर
38 भोपाल में विराट् छात्र प्रदर्शन : फिर हुई अभाविप के छात्र हित नीति की जीत

वैधानिक सूचना : राष्ट्रीय छात्रशक्ति में प्रकाशित लेख एवं विचार तथा रचनाओं में व्यक्त दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं। संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। समस्त प्रकार के विवादों का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली होगा।

संपादकीय

उनतीस सितम्बर को आधी रात के बाद भारतीय सेना के विशेष प्रशिक्षित कमांडो दस्तों ने पाक-अधिक्रांत जम्मू काश्मीर के भिम्बर, लिपा, केल और हॉटस्प्रिंग सेक्टरों में प्रवेश किया। कुछ ही समय में वे अपने लक्ष्य तक पहुँचे, आतंकवादियों के सात प्रशिक्षण-कैंप ध्वस्त किये और सुरक्षित वापस आ गये। इन सभी कैंपों की दूरी नियंत्रण-रेखा से दो किलोमीटर तक थी। अनुमान के अनुसार इस कार्रवाई में लगभग चालीस आतंकवादी और दो पाक सैनिक मारे गये।

इतिहास पर एक नज़र डालें तो जम्मू काश्मीर की आज की सारी परिस्थिति का प्रारंभिक घटनाक्रम भिम्बर और उसके आस-पास के उन्हीं स्थानों से शुरू हुआ था जहाँ 29 सितम्बर की रात भारतीय सेना ने कार्रवाई की। भिम्बर के लोग भारत से सेना भेजने की अपील करते रहे लेकिन सेना नहीं पहुँची और 9 नवंबर, 1947 को भिम्बर और उसके आस-पास के क्षेत्रों पर पाकिस्तान का अवैध कब्ज़ा हो गया। भारत के सैनिक पहुँचे, लेकिन 70 साल बाद।

जिस क्षेत्र में भारतीय सैनिकों ने कार्रवाई की है, वस्तुतः वह पाकिस्तान नहीं बल्कि जम्मू काश्मीर का ही एक भाग है जिस पर पिछले लगभग सात दशकों से पाकिस्तान का अवैध कब्ज़ा है। पाकिस्तान इस क्षेत्र का उपयोग भारत के ख़िलाफ जेहादी आतंक को चलाने में करता है।

काश्मीर में जो दशकों से चल रहा है और हाल के दिनों में उसमें जिस प्रकार की तेजी आई है, उससे जनमानस में यह बात पल रही थी कि बस अब बहुत हो गया। अब अलगाववादियों और उन्हें पीछे से समर्थन देनेवाले पाकिस्तान को कठोर संदेश दिया जाना चाहिये। प्रधानमंत्री मोदी ने वही किया जिसकी उम्मीद जनता उनसे कर रही थी। सरकार के लिये यह उचित समय है जब जम्मू कश्मीर का मामला पूरी तौर पर सुलझा लिया जाय। इसके लिए पाकिस्तान या दुनिया के किसी भी देश की सहमति अथवा मध्यस्थता की नहीं बल्कि दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। यदि केन्द्र सरकार यह दृढ़ता और साहस दिखाती है तो पूरे देश का विश्वास उसे प्राप्त होगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

एकात्म मानवदर्शन के प्रणेता स्व. पं. दीनदयाल उपाध्याय का यह जन्मशताब्दी वर्ष है। राजस्थान के धनकिया नाम के एक छोटे-से गाँव में 25 सितम्बर, 1916 को जन्मे दीनदयाल जी के माता-पिता का जन्म उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया। किशोरावस्था में भाई भी चल बसा। कष्टोंभरे जीवन ने उनमें नकारात्मकता लाने के स्थान पर समग्र मानवता के कष्टों के प्रति संवेदनशील बना दिया।

दीनदयाल जी ने किसी मंत्रद्रष्टा ऋषि की भाँति राष्ट्र की आत्मा का साक्षात्कार किया और अंत्योदय का मंत्र दिया। स्वतंत्र भारत में राजनैतिक मनमानी के विरुद्ध आंदोलनरत डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बलिदान के बाद भारत में जन्म ले रही अकुलाहट को स्वर देने का काम भारतीय जनसंघ ने किया। दीनदयाल जी ने इसके संगठन का देशभर में विस्तार किया। तुच्छ राजनैतिक स्वार्थओं से ऊपर उठकर भारतीय चिन्तन को सामने रख देश को दिशा देनेवाली संकल्पबद्ध टोली को गढ़ने की उनकी क्षमता के कारण ही उसका परवर्ती स्वरूप भारतीय जनता पार्टी आज केन्द्रीय भूमिका में है। दीनदयाल जी के जन्म के इस शताब्दी वर्ष में यह हम उनके दि[illegible] मार्ग पर कुछ पग भी चल सकें तो यह आयोजन सफल होगा।

दिल्ली विश्वविद्यालय सहित देश के अनेक विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में छात्र संघ चुनावों में परिषद् ने विजय-पताका फहराई है। इसका विवरण इस अंक में उपलब्ध है। आनेवाले दिनों में कुछ अन्य स्थानों से भी विजय के समाचार आने संभावित हैं। उनके प्रत्याशियों को शुभकामनाएँ, विजेताओं को बधाई।

विजय का सनातन पर्व विजयदशमी इस अंक के आप तक पहुँचने तक आ चुका होगा। असत्य पर सत्य की विजय को रेखांकित करनेवाला यह पर्व हम सभी को उत्तम सकल्पों से परिपूर्ण करे, इस शुभकामना के साथ,

आपका,
संपादक

दिल्ली विश्वविद्यालय में अभाविप, जेएनयू में वाम गठबंधन

डूसू के तीन विजयी उम्मीदवारों के साथ अभाविप अधिकारी

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ (डूसू) चुनाव में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (अभाविप) ने चार में से तीन पदों पर जीत दर्ज कर भगवा रंग का डंका बजाया तो दूसरी तरफ जेएनयू में एक बार फिर वामपंथियों ने जीत दर्ज की। यह दूसरा ऐसा मौका है जब डूसू चुनाव में लगातार चौथी बार अध्यक्ष पद पर अभाविप का कब्ज़ा हुआ है। इससे पहले 1996-99 के दौरान उसे यह उपलब्धि मिली थी। दो साल से लगातार चारों पदों पर हार रही एनएसयूआई ने इस बार संयुक्त सचिव पद पर जीत के साथ खाता खोला है। इससे पहले 2013 में एनएसयूआई को सचिव पद पर जीत मिली थी।

डूसू में अध्यक्ष पद पर अभाविप के अमित तंवर ने एनएसयूआई के निखिल यादव को रिकार्ड 4,680 मतों से हराया। उपाध्यक्ष पद पर अभाविप की प्रियंका छावड़ी ने एनएसयूआई के अरुण छपराना को 2,455 वोट; सचिव पद पर अभाविप के अंकित सांगवान ने एनएसयूआई की विनीता ढाका को 1,685 मतों और संयुक्त-सचिव पद पर एनएसयूआई के मोहित गरिढ़ ने अभाविप के विशाल यादव को 2,466 मतों से शिकस्त दी। अध्यक्ष पद पर अमित ने सर्वाधिक जबकि सचिव पद पर अंकित सांगवान को सबसे कम मतों से जीत मिली है।

वहीं, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव (जेएनयूएसयू) में केंद्रीय पैनल के चारों पदों पर ऑल इण्डिया स्टूडेंट्स एसोसिएशन (आईसा) और स्टूडेंट्स फेडरेशन ऑफ़ इण्डिया (एसएफआई) के गठबंधन ने जीत दर्ज़ की। अध्यक्ष पद पर वाम गठबंधन की ओर से आईसा के उम्मीदवार लखीमपुर, उप्र निवासी मोहित कुमार पाण्डेय जीते। उपाध्यक्ष पद पर वाम एसएफआई के अमल पीपी, महासचिव पद पर एसएफआई की ही सतरूपा चक्रवर्ती, जबकि संयुक्त-सचिव पद पर आईसा-उम्मीदवार अररिया, बिहार निवासी तबरेज हसन ने बाजी मारी।

क्या कहते हैं दिल्ली विश्वविद्यालय के विजेता प्रत्याशी...

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव में जीत मिलने के बाद पदाधिकारियों ने संगठन के तय मानकों पर काम करने तथा छात्रों की समस्याओं को दूर करने की दिशा में काम किए जाने की बात कही। बता दें कि दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव में तीन पदों– अध्यक्ष, उपाध्याक्ष और सचिव पद पर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् को जीत मिली, जबकि संयुक्त सचिव के पद पर एनएसयूआई के प्रत्याशी ने जीत दर्ज की। अपनी प्राथमिकताएँ गिनाते हुए विजयी पदाधिकारियों ने निम्नलिखित बातें कहीं...

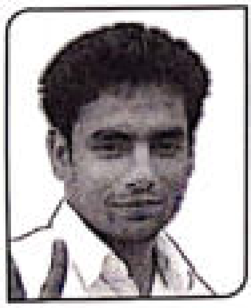

'यह जीत छात्रों को समर्पित हैं। अभाविप के छात्रहित के कार्यों और राष्ट्रवादी सोच को छात्रों ने समर्थन दिया। छात्रों के बीच रहकर उनके हित में काम करना लक्ष्य है। पहली प्राथमिकता रूम रेंट कंट्रोल एक्ट को लागू कराने की है। जिससे बाहर से यहाँ पढ़ने आए छात्र-छात्राओं के लिए महंगी रिहाइश की समस्या हल हो। कोशिश है कि इस साल कई नये छात्रावासों के निर्माण का कार्य शुरू हो। साथ ही प्रिंटेड मार्कशीट, यू स्पेशल बस-सुविधा का विस्तार एवं मेट्रो में रियायती पास आदि सुविधा के लिए भी काम करेंगे।

–अमित तँवर, अध्यक्ष

दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों का धन्यवाद जो उन्होंने सालभर परिसर में रहकर छात्रों की समस्याओं के समाधान के लिए तत्पर रहनेवाले छात्र संगठन पर भरोसा जताया। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् अपनी घोषणाओं के अनुरूप महिला-सशक्तिकरण की दिशा में काम करेगी। महिला सुरक्षा एप को सभी छात्राओं की पहुँच बनाने का भी काम होगा। छात्राओं की समस्याओं को दूर करने के साथ उनके लिए उचित माहौल बनाने को लेकर भी प्रयास किए जाएँगे। साथ ही परिसर में वॉशरूम और सड़क-निर्माण के काम को भी गति प्रदान की जाएगी।

–प्रियंका छबड़ी, उपाध्यक्ष

हम मुद्दों को लेकर विश्वविद्यालय परिसर में थे, इन्हीं मुद्दों को लेकर छात्रों ने हमें चुना है। हमारी कोशिश होगी कि इन मुद्दों का हल जल्द-से-जल्द निकाला जाए। प्राथमिकता के लिहाज़ से पहला प्रयास खेल के मैदानों और उपक्रमों में सुधार का रहेगा। वहीं, खेल से जुड़ी गतिविधियों को बढ़ाने का काम भी किया जाएगा। इसके अलावा शैक्षिक स्तर पर छात्रों के सामने आनेवाली समस्याओं को भी मज़बूती से उठाया जाएगा।

–अंकित सिंह सांगवान, सचिव

■

दीनदयाल उपाध्याय

भारतीय समाज की शिक्षा-व्यवस्था

■ देवेश खण्डेलवाल

इतिहास अपने में इतना कुछ समेटे होता है कि आमतौर पर हम अधिकांश लोगों और घटनाओं को भूल जाते हैं। कुछ ही नाम ऐसे होते है जिन्हें सदियों तक याद किया जाता है। हालाँकि, एक बड़ी संख्या उनकी है, जिन्होंने अपने प्रयासों से भारतीय इतिहास को स्वर्णिम बनाए जाने में योगदान दिया और जब भी उसमें ह्रास होने लगा उसे हरसंभव तरीके से पुनर्स्थापित किया। दुर्भाग्य है, इन्हीं लोगों का स्मरण हमें नहीं है। उन नामों में ऐसे ही एक नाम है, दीनदयाल उपाध्याय।

दीनदयाल उपाध्याय ने 1916 से 1968 तक के अपने जीवनकाल में सम्पूर्ण मानवता के विकास के लिए अनेक सहज उदहारण प्रस्तुत किए हैं। राजनैतिक और आर्थिक विषयों में अपनी विशेषता के साथ उन्होंने भारतीय समाज पर आधारित शिक्षा के लिए भी अपना योगदान दिया। प्राचीनतम भारतीय शिक्षा-परम्परा के पुनर्जागरण के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने 1941 से ही प्रयास शुरू कर दिए थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य उत्तरप्रदेश में 1937 में शुरू हुआ था। दीनदयाल उपाध्याय वहाँ इस कार्य को शुरू करनेवाले प्रथम स्वयंसेवकों में से एक थे। उन्होंने 1942 में अपना छात्रजीवन सम्पूर्ण किया और इसी वर्ष वह संघ के प्रचारक बन गये। वह सर्वप्रथम लखीमपुर, उत्तरप्रदेश में जिला प्रचारक नियुक्त हुए। संघ के प्रचारक रहते हुए उनके संघ शिक्षा वर्गों में हर साल बौद्धिक होते रहे।

इन बौद्धिक वर्गों के द्वारा उन्होंने स्वयंसेवकों को भारतीय सभ्यता, धर्म, संस्कृति और इतिहास के पुनः स्मरण से शिक्षित किया। यह वह दौर था, जब भारत पर पश्चिम के विचारों और ख़ासकर ब्रिटिश द्वारा अपनाई गई नीतियों का असर दिखने लगा। लगभग पिछले 300 सालों में यहाँ स्थानीय प्रयोगों का स्थान विदेशी प्रभाव ने ले लिया था। इन तीन शताब्दियों में शिक्षा-व्यवस्था का हमारा गौरवशाली इतिहास ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया था।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा पर कुल राजस्व का मात्र 5 प्रतिशत खर्च किया जाता था, जबकि 34 प्रतिशत सुरक्षा, पुलिस और जेलों के लिए आरक्षित था। इस दौरान शिक्षा को लेकर कोई सुधार नहीं किये गए, बल्कि जो बचा था उसे भी नष्ट करने के प्रयास किये जाने लगे। इसमें सबसे बड़ा नाम आता है, थॉमस बैबिंगटन मैकॉले। मैकॉले ने फरवरी, 1835 में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था पर अपनी एक रिपोर्ट ब्रिटिश भारतीय सरकार को सौंपी। उस समय विलियम बेंटिक भारत के गवर्नर-जनरल थे। बेंटिक और मैकॉले– दोनों के भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में

विचार समान थे। बेंटिक ने 7 मार्च, 1835 को मैकॉले की सलाह पर एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें स्थानीय भारतीयों के बीच यूरोपीय साहित्य और विज्ञान को बढ़ावा देना था। यह निश्चित किया गया कि शिक्षा से संबंधित सभी निधियों का इस्तेमाल केवल अंग्रेज़ी शिक्षा के लिए ही होगा। (विलियम एडम, रिपोर्ट्स ऑन द स्टेट ऑफ़ एजुकेशन इन बंगाल, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, 1941, पृष्ठ, XVI) 1836 में

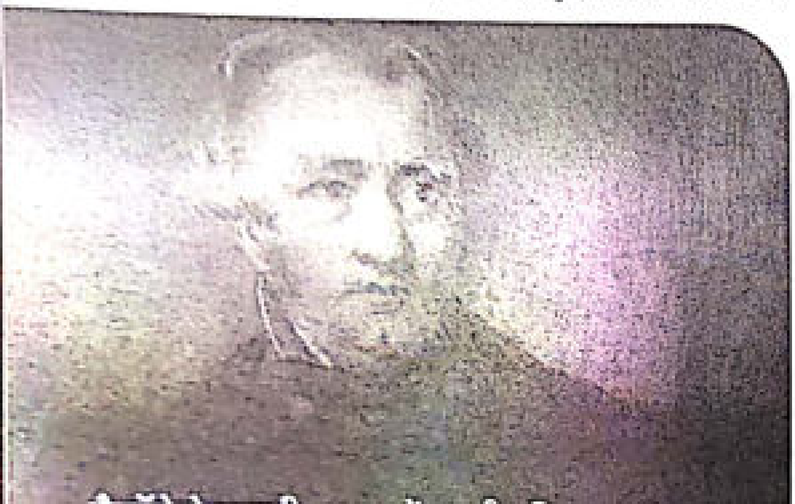

मैकॉले ने फरवरी, 1835 में भारतीय शिक्षा-व्यवस्था पर अपनी एक रिपोर्ट ब्रिटिश भारतीय सरकार को सौंपी। उस समय विलियम बेंटिक भारत के गवर्नर-जनरल थे। बेंटिक और मैकॉले— दोनों के भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में विचार समान थे। बेंटिक ने 07 मार्च, 1835 को मैकॉले की सलाह पर एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें स्थानीय भारतीयों के बीच यूरोपीय साहित्य और विज्ञान को बढ़ावा देना था। यह निश्चित किया गया कि शिक्षा से संबंधित सभी निधियों का इस्तेमाल केवल अंग्रेज़ी शिक्षा केलिए ही होगा। 1836 में मैकॉले ने अपने पिता को एक पत्र लिखा। इस पत्र से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कैसे शिक्षित भारतीय, जो कि पश्चिम की संस्कृति के प्रभाव में थे, उन्होंने साधारण जनता से अपने-आपको अलग कर लिया और ब्रिटिश सरकार के साथ मिलकर भारतीयों का ही शोषण करने लगे। मैकाले ने लिखा, 'हमारे अंग्रेज़ी विद्यालय शानदार कामयाब हो रहे हैं। इस शिक्षा का हिंदुओं पर असाधारण प्रभाव हो रहा है। कोई भी हिंदू, जिसने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की है, वह कभी अपने धर्म के प्रति निष्ठा से नहीं जुड़ पायेगा।'

मैकॉले ने अपने पिता को एक पत्र लिखा। इस पत्र से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि कैसे शिक्षित भारतीय, जो कि पश्चिम की संस्कृति के प्रभाव में थे, उन्होंने साधारण जनता से अपने-आपको अलग कर लिया और ब्रिटिश सरकार के साथ मिलकर भारतीयों का ही शोषण करने लगे। मैकॉले ने लिखा, हमारे अंग्रेज़ी विद्यालय शानदार कामयाब हो रहे हैं। इस शिक्षा का हिंदुओं पर असाधारण प्रभाव हो रहा है। कोई भी हिंदू, जिसने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की है, वह कभी अपने धर्म के प्रति निष्ठा से नहीं जुड़ पायेगा।' (जॉर्ज ओट्टो ट्रेवेल्यन, लाइफ एण्ड लेटर्स ऑफ़ लॉर्ड मैकाले, लॉंग्मैंस, लन्दन, 1876, पृ. 329-330)

ब्रिटिश भारत में हमारी शिक्षा के आधार संस्कृति और परम्पराओं— दोनों को जान-बूझकर सरकार द्वारा नष्ट किया जाने लगा। इसका एक अन्य उदहारण 19 जुलाई, 1854 का एक ब्रिटिश प्रेषण है, जिसके अनुसार सरकार का उद्देश्य सिर्फ ऐसे लोगों को शिक्षित करना था जो सभी विभागों में और सभी स्तरों पर ब्रिटिश सरकार के साथ जुड़े रहे और साथ ही उनके प्रति सत्यनिष्ठा भी रखें। (बी. एम. शंखधर, इनसाइक्लोपिडिया ऑफ़ एजुकेशन सिस्टम इन इण्डिया, खण्ड 1, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, दिल्ली, 1999, पृ. 128)

अब इस अनचाही व्यवस्था का प्रतिकार करने के लिए हमें एक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी, जिसमें हमारे प्राचीन गौरव का पुनर्स्मरण और भारतीय विचारों के प्रति चेतना का विचार संकलित हो। दीनदयाल उपाध्याय इस बात से परिचित थे कि वास्तव में अब किस दिशा में आगे बढ़ना है। उन्होंने एक संघ शिक्षा वर्ग के अपने उद्बोधन में कहा था, शिक्षा की जितनी व्यापक और गहरी व्यवस्था होगी, समाज उतना ही अधिक पुष्ट और गंभीर होगा। नयी पीढ़ी के जितने लोगों को जितनी अधिक मात्रा में पिछली ज्ञान-निधि प्राप्त होगी, उसी पूँजी को लेकर वह जीवन के कार्यक्षेत्रों में उतरेगी। (पांचजन्य, 10 नवम्बर, 1958)

इस ज्ञान-निधि के विस्तार के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने दो पुस्तकें लिखीं, एक थी सम्राट् चन्द्रगुप्त और दूसरी थी, जगद्गुरु शंकराचार्य। इन दोनों पुस्तकों से ईसा पूर्व और ईसा बाद के दोनों कालों के एक संक्षिप्त इतिहास का पता चलता है। ये दोनों पुस्तकें उन्होंने स्कूल जानेवाले विद्यार्थियों के लिखी थी, जिसका लक्ष्य एक ही था, अर्थात् विद्यार्थियों को भारत के ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति सजग और शिक्षित करना। सम्राट्

चन्द्रगुप्त पुस्तक की भूमिका में दीनदयाल लिखते भी हैं, जिनके लिए यह पुस्तक लिखी गई है, 'उन्हें सब प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों के वन में भ्रमण करने की आवश्यकता नहीं है। इतना जानना पर्याप्त है कि यूरोपीय विद्वानों द्वारा प्रयत्नपूर्वक एवं उनका अन्धानुकरण करनेवाले भारतीय विद्वानों द्वारा अनजाने में फैलाए हुए अन्धकार को नष्ट करनेवाले ऐतिहासिक शोध के सूर्यप्रकाश में ये सत्य घटनाएँ हैं।' (दीनदयाल उपाध्याय, सम्राट् चन्द्रगुप्त, 1946)

यह तथ्य भी है कि इन बीती शताब्दियों में हमारे पूर्वजों द्वारा किए गए लगातार अध्ययनों और शोधों का परिणाम यह निकला कि हमारे यहाँ शिक्षा के सभी क्षेत्रों, यानि अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान, कला, साहित्य, गणित, चिकित्सा, दर्शन और व्याकरण आदि क्षेत्रों में क्रमागत विकास हुआ। इसके वर्तमान में भी कई साक्ष्य उपलब्ध हैं। इसका एक सबसे बड़ा उदाहरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मिलता है। ईसा से 322 वर्ष पूर्व महानतम सम्राट् चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठे और एक विस्तृत और विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। इन्हीं सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमन्त्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजनीति के कम-से-कम पाँच ऐसे सम्प्रदायों और तेरह लेखकों का उल्लेख किया है, जिन्होंने उस समय से भी पहले राजनीतिविज्ञान के विकास में योगदान दिया था। यानि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से भी पहले गंभीरता के साथ शैक्षिक गतिविधियों का क्रम जारी था। आज हमारे पास उपलब्ध दो महाकाव्य रामायण और महाभारत भी इसके साक्ष्य हैं। प्राचीन भारत ऐसे ही अनगिनत धरोहरों का साक्षी रहा है।

आखिर, इस विशाल साहित्य और उत्तम चरित्र के व्यक्तियों का भारत में विकास कैसे हुआ? इसका एक उदाहरण ईसा से पहले की आखिरी शताब्दियों में मिलता है। तब तक्षशिला शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था। यहाँ शिक्षा के लिए विश्व के अनेक देशों से विद्यार्थी आते थे। यह सिलसिला अगली शताब्दियों तक लगातार जारी रहा। ऐसे ही एक और विश्वविद्यालय का उल्लेख ईसा के बाद की पाँचवीं शताब्दी में नालन्दा में मिलता है। नालन्दा सबसे सफल शिक्षा-केंद्र रहा है। ह्वेनसांग ने कई वर्षों तक यहाँ शिक्षा ली। उसने लिखा है, 'भारत में शिक्षा की ऐसी हज़ार संस्थाएँ थीं, पर कोई भी नालन्दा के बराबर भव्य नहीं थीं।' (डॉ. आर. सी. मजूमदार, प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962, पृ. 402) इसी समय में विक्रमशिला ने भी शिक्षा के सभी विषयों पर अपने शोधों और अध्ययनों के माध्यम से कीर्तिमान स्थापित किए। इस प्रकार भारत के अतीत में विकसित हुई यह बौद्धिक जीवन और साहित्य की असीमित निधियाँ इस बात का परिचय देती हैं कि हमारे यहाँ शिक्षा की एक सुनियोजित व्यवस्था थी।

दीनदयाल उपाध्याय ने अपने प्रत्येक उद्बोधनों में इन्हीं सन्दर्भों का उल्लेख किया है। इसी क्रम में दीनदयाल उपाध्याय शिक्षा के प्रश्न को बेहद सामाजिक दृष्टिकोण से देखते थे। उनका मानना था कि एक के बाद एक मानव जब दूसरों को प्रायः उसके बाद जन्मे हों, विभिन्न क्षेत्रों के अपने सम्पूर्ण अनुभव को अथवा उसमे सारभूत अंशों को विभिन्न उपायों द्वारा प्रदान अथवा संसर्गित करता है, इस प्रक्रिया में एक निरंतर गतिमान मानव समूह की सृष्टि होती है, जिसे समाज कहते हैं। वास्तव में, इस अनुभव-प्रसारण की क्रिया को शिक्षा कहते हैं। (पांचजन्य, 10 नवम्बर, 1958)

वास्तव में, यह एक प्राचीन गुरुकुल-परंपरा थी। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि शुरूआत में लेखन-कला अज्ञात

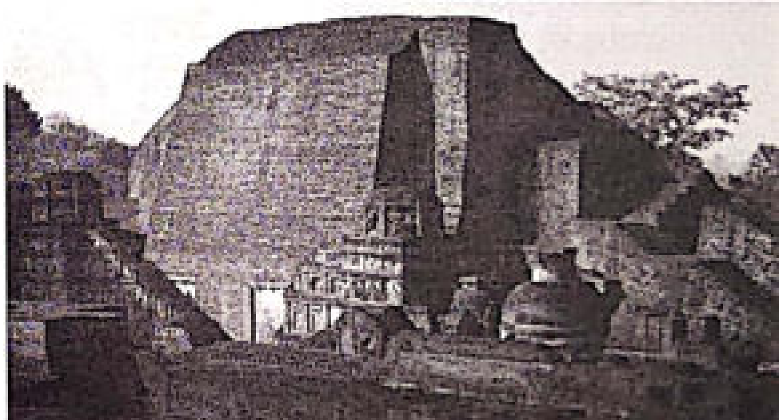

नालन्दा सबसे सफल शिक्षा-केंद्र रहा है। ह्वेनसांग ने कई वर्षों तक यहाँ शिक्षा ली। उसने लिखा है, 'भारत में शिक्षा की ऐसी हज़ार संस्थाएँ थी, पर कोई भी नालन्दा के बराबर भव्य नहीं थी।' इसी समय में विक्रमशिला ने भी शिक्षा के सभी विषयों पर अपने शोधों और अध्ययनों के माध्यम से कीर्तिमान स्थापित किए। इस प्रकार भारत के अतीत में विकसित हुई यह बौद्धिक जीवन और साहित्य की असीमित निधियाँ इस बात का परिचय देती हैं कि हमारे यहाँ शिक्षा की एक सुनियोजित व्यवस्था थी।

थी, लेकिन भारतीय प्राचीनतम साहित्य, मौखिक परंपरा द्वारा सुरक्षित रहा। प्रो.डी. आर. भण्डारकर का आतंरिक प्रमाणों के आधार पर कहना है कि भारत में ऋग्वेद के समय से लेखन-कला प्रचलन में थी। (डॉ. आर. सी. मजूमदार, पूर्वोद्धृत, पृ. 73)। हालांकि, यानि जैसा भी रहा हो, सत्य यह है कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह व्यवस्था मौखिक अथवा लिखित रूप में कायम रही।

सर्वश्रेष्ठ इतिहासकारों में से एक डॉ.आर.सी. मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत' में गुरुकुल-व्यवस्था का उल्लेख करते हुए लिखा है, प्राचीन भारत में वैदिक शिक्षा के अनेक केंद्र थे, जिनका संचालन महान् आचार्य करते थे। ये केंद्र आगे चलकर सूत्र और चरण के नाम से प्रसिद्ध संस्थाओं के रूप में विकसित हुए। और इनके कारण ही विभिन्न वैदिक शाखाएँ बनीं और वैदिक साहित्य के विभिन्न पाठ स्थिर हुए। चरित्र-निर्माण और व्यक्तित्व का विकास करनेवाली उच्च आचरण की शिक्षा, शिक्षा-व्यवस्था की रीढ़ थी। विद्यार्थी अध्ययन और गुरु के आचरण का अनुकरण कर ज्ञान प्राप्त करते थे। (वही, पृ. 73) यही एक कारण था कि भारतीय शिक्षा का स्वरूप हमेशा से उच्च और सम्मानजनक रहा है।

इन गुरुकुलों में शिक्षा का शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा निःशुल्क थी। यहाँ भोजन और रहने की व्यवस्था भी होती थी। केवल जीवनयापन करने के लिए विद्यार्थी समाज में लोगों के बीच जाता था, और कोई भी व्यक्ति उन्हें खाली नहीं लौटाता था, अर्थात् समाज द्वारा भी शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। निःसंदेह, इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा का विश्व के इतिहास में कोई मुकाबला नहीं हो सकता। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भी जो काम समाज के हित में हो, उसके लिए शुल्क लिया जाए, यह तो उलटी बात है। उनका कहना था कि कल्पना करे कि कल को शिक्षा-शुल्क का बहिष्कार करके अथवा उसे देने में असमर्थ होने के कारण बच्चे पढ़ना बंद कर दें। क्या समाज इस स्थिति को सहन करेगा? पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसे नहीं लेते। हम तो अपनी ओर से पूँजी लगाते है और जानते है कि पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का विनियोजन है। व्यक्ति शिक्षित होने पर समाज के लिए काम करेगा ही। (एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 2008, पृ. 72) किसी बच्चे को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत् पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है। (वही, पृ. 72)

गुरुकुलों में शिक्षा का शुल्क नहीं लिया जाता था। उच्चतम श्रेणी तक शिक्षा नि:शुल्क थी। यहाँ भोजन और रहने की व्यवस्था भी होती थी। केवल जीवनयापन करने के लिए विद्यार्थी समाज में लोगों के बीच जाता था, और कोई भी व्यक्ति उन्हें खाली नहीं लौटाता था, अर्थात् समाज द्वारा भी शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। नि:संदेह, इस प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा का विश्व के इतिहास में कोई मुकाबला नहीं हो सकता।

यह था भारत का वह सुनहरा अतीत, जो बीत चुका है। दीनदयाल उपाध्याय को जब भी मौका मिला, उन्होंने हमेशा इन शानदार शताब्दियों को लोगों के जेहन में उतारा। वह स्वयं एक शोधकर्ता थे, जिन्होंने हमेशा भारतीयता की [illegible] अवयवों का गहन अध्ययन किया था। एकात्म मानवदर्शन के रूप में इस वर्तमान पीढ़ी को उनके द्वारा दी गई एक उत्कृष्ट कृति है, जिसमें सम्पूर्ण भारतीय व्यवस्थाओं का एक संक्षेप में वर्णन है। अब समय है कि इस दर्शन को आधार बनाकर भारतीय शिक्षा दर्शन को पुनर्जीवित किया जाए। उनके द्वारा प्रतिपादित यह एकात्म दर्शन का सार इतना व्यापक है कि इसमें समाज को महत्त्व दिया है, क्योंकि इससे पूरी व्यवस्था का लाभ अंतिम व्यक्ति को भी मिल सके। उनका मानना था कि शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। हम ऐसे मानव की कल्पना कर सकते हैं, जिसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न मिली हो, और जो अपनी सहज प्रवृत्तियों की सहारे जीवनयापन करता हो, किन्तु बिना शिक्षा के समाज संभव नहीं। (पांचजन्य, 10 नवम्बर, 1958)। यह कथन इसलिए यथार्थ है क्योंकि इसी समाज ने एक समय में भारत की अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता और कर्तव्यप्रधान जीवन की भावना की शिक्षा का ज्ञान सम्पूर्ण विश्व को दिया था।

(लेखक जम्मू-काश्मीर अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली में रिसर्च एसोसिएट हैं)

रैली को सम्बोधित करते हुए कोंकण प्रांत मंत्री प्रमोद कराड़

छात्र-समस्याओं को लेकर अभाविप का प्रदर्शन

मुंबई विश्वविद्यालय की प्रशासनिक व्यवस्था के ख़िलाफ निकाली रैली

मुंबई विश्वविद्यालय के भ्रष्ट और सुस्त कामकाज के कारण आए दिन छात्रों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। प्रवेश-प्रक्रिया से लेकर परीक्षा-परिणाम आने तक विद्यार्थियों को लगातार प्रशासनिक उदासीनता झेलनी पड़ती है। कभी परीक्षा की समय-सारिणी वक्त पर नहीं जारी होती तो कभी उसके परिणाम आने के लिए विद्यार्थियों को छह-छह माह तक का इंतजार करना पड़ता है। इन सभी समस्याओं को लेकर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (अभाविप) ने 30 अगस्त को विश्वविद्यालय-प्रशासन के खिलाफ विशाल रैली निकाली।

शिक्षा के स्तर पर इस प्रकार की उदासीनता और छात्रों के भविष्य से खिलवाड़ किए जाने के मुद्दे पर विद्यार्थी परिषद् ने मुंबई विश्वविद्यालय से संबद्ध कई कॉलेज़ों में भी विरोध-प्रदर्शन किया। इस दौरान उत्तर मुंबई के डालमिया कॉलेज़, दक्षिण मुंबई के जयहिंद कॉलेज़ और कल्याण डोंबिवली के बिरला कॉलेज़ में छात्रों की समस्याओं को लेकर परिषद् ने अपनी आवाज़ बुलंद की। इससे पहले, विद्यार्थियों में जागृति लाने के उद्देश्य से अभाविप ने 22 से 24 अगस्त तक संघर्ष-यात्रा भी निकाली, जिसे भारी संख्या में छात्रों का समर्थन मिला। यही नहीं, विद्यार्थी परिषद् ने 26 अगस्त को कॉलेज़ बंद का आह्वान किया, जो काफ़ी सफल रहा।

मुंबई विश्वविद्यालय में प्रशासनिक स्तर पर फैली अराजकता के प्रति रोष व्यक्त करते हुए अभाविप-कार्यकर्ताओं ने कहा कि नये कुलगुरु की नियुक्ति के बाद यह उम्मीद थी कि अब विश्वविद्यालय के कामकाज में परिवर्तन आएगा। परन्तु कामकाज के स्तर में सुधार के बजाय यह और भी खराब ही हुआ। प्रशासनिक गतिविधियों के खिलाफ प्रदर्शन के दौरान छात्रों ने 'कुलगुरु एक काम करो, कुर्सी छोड़ो आराम करो', 'ठीक करेंगे तीन काम, प्रवेश-परीक्षा और परिणाम'-जैसे नारों से विश्वविद्यालय परिसर गुंजायमान रहा।

मुंबई विश्वविद्यालय की कारगुजारियों के ख़िलाफ लामबंद हुए छात्रों ने भविष्य से खिलवाड़ नहीं किए जाने को लेकर अपना मांगपत्र कुलसचिव को सौंपा। विश्वविद्यालय के सुस्त कामकाज के विरोध में निकाली गई रैली में कुल संख्या तीन हज़ार से ज़्यादा रही। मुंबई विश्वविद्यालय के इतिहास में यह पहली बार था जब इतनी बड़ी संख्या में विद्यार्थी प्रशासन के विरोध में इकट्ठा हुए थे। कोंकण व महाराष्ट्र के प्रदेश संगठन मंत्री देवदत्त जोशी और कोंकण प्रांत मंत्री प्रमोद कराड़ की अगुवाई में हुई विशाल रैली के बाद राज्य सरकार हरकत में आयी और मामले की जाँच को लेकर एक 12-सदस्यीय जाँच-समिति का गठन किया। ■

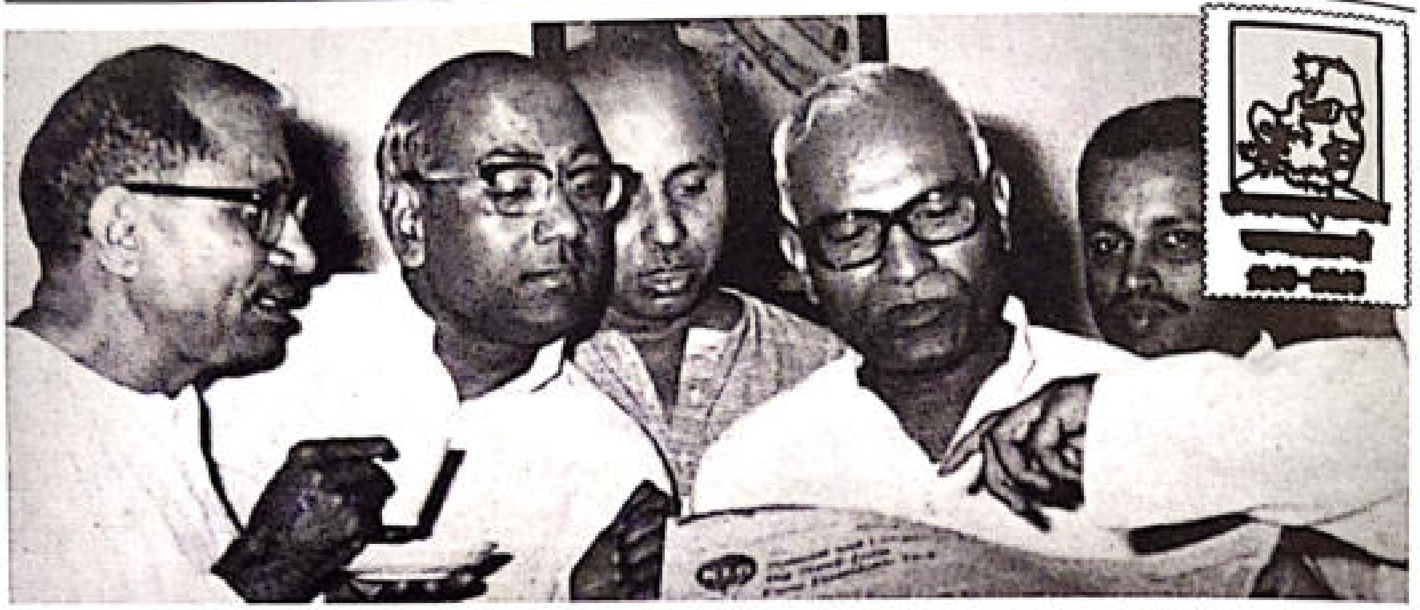

संस्कृति के अग्रदूत थे दीनदयाल जी

आलोक कुमार

पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक थे। वृत्ति से सामाजिक कार्यकर्ता थे। सन् 1952 में संघ के कहने से तत्कालीन भारतीय जनसंघ में आए और 1967 तक इसके महामंत्री रहे। दिसम्बर 1967 में वह जनसंघ के अध्यक्ष चुने गए। इस पद पर दो माह भी पूरे नहीं हो पाए थे कि दुर्भाग्य से 11 फरवरी, 1968 को उनकी हत्या हो गयी।

जनसंघ के निर्माण और विकास में, उसका संगठनात्मक ढाँचा खड़ा करने में, जनता में इस दल को मज़बूत बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उल्लेखनीय बात यह है कि इन सबके द्वारा भारत की राजनीति को उन्होंने गहराई से प्रभावित किया। जनसंघ में राजनीतिक रूप से सक्रिय रहने के बावजूद उन्होंने राजनीति को कभी सर्वोपरि नहीं माना।

सन् 1967 में संघ के एक शिक्षा वर्ग में स्वयंसेवकों को उन्होंने संबोधित किया। अपने संबोधन में एक जगह यह कहकर कि 'संघ के स्वयंसेवकों को राजनीति से दूर रहना चाहिए, जैसे कि मैं हूँ' सबको चकित कर दिया। फिर उन्होंने स्वयं इस कथन को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा, ''संघ का स्वयंसेवक समाज के हर क्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकर्ता के रूप में जाना जाता है। विभिन्न राजनीतिक-आर्थिक संस्थाओं में काम करते हुए भी वह उन संस्थाओं व क्षेत्र की एकांगिता को अपने पर हावी नहीं होने देता। राजनीति में जाते ही आज जो सत्तावाद और दलवाद व्यक्ति पर हावी हो जाता है, उसे राजनीति क्षेत्र की मज़बूरी समझा जाता है। स्वयंसेवक को इससे दूर रहना चाहिए।''

वस्तुतः दीनदयाल जी राजनीति में रहते हुए भी संस्कृति के ही अग्रदूत थे। अपने इसी मौलिक स्वभाव और चिन्तन के कारण वह राजनीति से ऊपर उठकर राष्ट्रभाव से विचार करते थे। सन् 1961 में जब जनसंघ एक छोटा राजनीतिक दल था और निकट भविष्य में इसके सत्ता में आने की संभावना भी नहीं दीनदयाल जी ने 'राजनीतिक दलों की आचारसंहिता' शीर्षक से एक लेख लिखा था। उन्होंने इसमें विपक्षी दलों द्वारा किए जानेवाले आन्दोलनों, धरनों, प्रदर्शनों व बंद किए जाने की राजनीति पर तीखी टिप्पणियाँ की थीं। उन्होंने लिखा था, 'आज हमारा राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन स्वातंत्र्य संघर्ष का ही एक विस्तारमात्र रह गया है। इसीलिए, लोग सामान्यतः उन सारे साधनों का सहारा लेना उचित समझते हैं, जिनका उपयोग हम विदेशी शासकों के विरुद्ध करते थे। आंदोलन करनेवाली जनता के प्रति भी सरकार/प्रशासन के दृष्टिकोण में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। इस प्रकार जनता की दृष्टि में सरकार

धीरे-धीरे एक भयानक पिशाच का प्रतीक बन जाती है। दोनों के बीच खाई बढ़ती जाती है।'

दीनदयाल जी को लगता था कि स्वतंत्र देश में अपनी ही सरकार के प्रति जनता के मन में अनास्था होना ठीक नहीं है। दीनदयाल जी ने लिखा, 'सरकार आंदोलन कुचलती है तो दमनकारी मानी जाती है तथा वह जनता से दूर हो जाती है, और अगर वह झुकती है तो दुर्बल समझी जाती है। अपनी ही सरकार के प्रति यह दोनों भाव ठीक नहीं हैं।'

सरकारों को भी उन्होंने राय दी थी कि, 'सरकारों को, उन्हें मिलनेवाले प्रतिवेदनों, प्रार्थना-पत्रों पर सहानुभूति से शीघ्र निर्णय करना चाहिए। उचित विषयों पर आंदोलन की नौबत नहीं आने देनी चाहिए।'

आंदोलन के विषयों पर दीनदयाल जी का परामर्श था,'दो आम चुनावों के बीच केवल छोटे मुद्दों के लिए सरकार पर दबाव डालना चाहिए और बड़े मुद्दों को चुनाव के समय जनता के निर्णय के लिए छोड़ देना चाहिए। चुनाव में सरकार को बदल देने के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सरकारी नीति में बड़े परिवर्तन के लिए हठपूर्वक आग्रह करना अप्रजातांत्रिक होगा।'

निश्चय ही, दीनदयाल जी मात्र एक विरोधी दल के नेता के नाते बँधे हुए नहीं थे। एक द्रष्टा-मनीषी के नाते वह दूरगामी-शाश्वत विचार कर सकते थे। वह कहते थे कि सृष्टि में सब जगह द्वैत देखना, उनमें परस्पर सतत संघर्ष मानना और उसमें कुछ कामचलाऊ तालमेल या रोकथाम करना ग़लत है। दीनदयाल जी भारतीय संस्कृति के मूल विचार के आधार पर सृष्टि में सब जगह 'एकात्मता' के दर्शन करते थे, और पश्चिमी द्वैत विचार को सिरे से अस्वीकार करते थे।

पश्चिमी मान्यता के अनुसार व्यक्ति और समाज में तथा व्यक्ति और सरकार में संघर्ष माना जाता है। इस संघर्ष में समाज और सरकार बड़े पक्ष हैं, इसलिए दमनकारी मान लिए जाते हैं। इनसे बचने के लिए व्यक्ति को कुछ मौलिक अधिकार और इन अधिकारों की रक्षा के लिए अदालत में जाने का रास्ता दिया जाता है।

दीनदयाल जी इस संघर्ष की मान्यता को ही अस्वीकार करते थे। इसके लिए उन्होंने एक सरल-सा उदाहरण दिया। उनका कहना था, 'यदि हाथ में एक चौकोर डिब्बा ले लिया जाए तो इसकी ऊपर तथा नीचे की दो सतहें साफ़ नज़र आती हैं।' उन्होंने सवाल उठाया था कि, 'इनमें से क्या कोई भी सतह अलग की जा सकती है? डिब्बे को कितना भी छोटा कर दिया जाए यह सतहें बनी ही रहेंगी। ठीक उसी प्रकार जिस तरह एक सिक्के के दो पहलू होते हैं। इन्हें चित्त और पट कहते हैं। सिक्के से भी उसका कोई पहलू नहीं निकाला जा सकता है।'

दीनदयाल जी ने कहा, 'ठीक इसी तरह व्यक्ति और समाज– दोनों को अलग नहीं किया जा सकता। न ही यह तय किया जा सकता कि व्यक्ति बड़ा है या समाज? समाज भी बड़ा है और व्यक्ति भी। ऐसा भी कहा जा सकता है कि जितना बड़ा व्यक्ति है उतना ही बड़ा समाज है और जितना बड़ा समाज है उतना ही बड़ा व्यक्ति। दोनों अभिन्न हैं।'

उनका कहना था, 'भारत का यह निष्कर्ष है कि व्यक्ति और समाज को विरोधी मानना ही भूल है। विकृतियों, अव्यवस्था की बात छोड़ दी जाए क्योंकि उन्हें दूर करने के उपाय किए जा सकते हैं। सत्य यही है कि व्यक्ति और समाज में किसी भी तरह द्वैत नहीं हैं। व्यक्ति अपने बारे में सोचने के साथ समाज के बारे में भी सोचे। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।'

उनकी मान्यता थी, 'बिना व्यक्ति के समाज की कल्पना नहीं की जा सकती और समाज के बिना व्यक्ति की। समाज व्यक्ति को

प्रिय मित्रो !

शिक्षा-क्षेत्र की प्रतिनिधि-पत्रिका के रूप में 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' का सितम्बर-अक्टूबर 2016 अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसमें दीनदयाल उपाध्याय जी के जीवन से संबंधित तथा विभिन्न समसामयिक घटनाक्रमों और ख़बरों का संकलन किया गया है। आशा है, यह अंक आपकी आवश्यकताओं के अनुरूप उपादेय साबित होगा। कृपया 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति' से संबंधित अपने सुझाव एवं विचार हमें नीचे दिए गए संपादकीय कार्यालय के पते अथवा ई-मेल पर अवश्य भेजें :

संपादक, 'राष्ट्रीय छात्रशक्ति'
'छात्रशक्ति भवन',
26 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नयी दिल्ली–110002.
फोन : 011-23216298
Visit us at : www.abvp.org

chhatrashakti.abvp@gmail.com
www.facebook.com/chhatrashakti
www.twitter.com/chhatrashakti1

दीनदयाल जी का कहना था, 'भारत का यह निष्कर्ष है कि व्यक्ति और समाज को विरोधी मानना ही भूल है। विकृतियों, अव्यवस्था की बात छोड़ दी जाए क्योंकि उन्हें दूर करने के उपाय किए जा सकते हैं। सत्य यही है कि व्यक्ति और समाज में किसी भी तरह द्वैत नहीं हैं। व्यक्ति अपने बारे में सोचने के साथ समाज के बारे में भी सोचे। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।'

शिक्षित तथा संस्कारित करता है। व्यक्ति अपने अंदर सुषुप्त श्रेष्ठताओं के विकास का अवसर पाता है। व्यक्ति को बुद्धिमान, धैर्यवान, पराक्रमी, शक्तिवान् और धनवान् बनाने का काम समाज करता है।'

'समाज से सब कुछ पाकर व्यक्ति सक्षम होकर स्वयं कर्म करता है। लेकिन, जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं नहीं खाता, व्यक्ति भी अपने सत्कर्म का फल केवल स्वयं नहीं चखता, समाज को दे देता है।'

दीनदयाल जी के ये विचार श्रीमद्भगवद्गीता से कितना मेल खाते हैं, जिसमें यह कहा गया है कि जो व्यक्ति केवल अपने लिए रसोई बनाता है वह चोर है, और दण्ड का भागी है। गीता का आग्रह है कि अपनी कमाई में से समाज को उसका भाग देने के बाद जो बचता है, वह यज्ञशिष्ट हो जाता है, प्रसाद बन जाता है।

दीनदयाल जी के अनुसार, 'भारतीय विचार-पद्धति में व्यक्ति और समाज का सामंजस्य है। व्यक्ति ने समाज को दिया कर्म और त्याग। समाज से व्यक्ति को मिली शिक्षा और मिला योगक्षेम। व्यक्ति और समाज को जोड़े रखने का कार्य जिस आधार पर होता है उसे धर्म कहा गया है।'

दीनदयाल जी की यह भी मान्यता थी, 'व्यक्ति और समाज को अलग-अलग हिस्सों में, परस्पर विरोध की भूमिका में नहीं देखा जा सकता। विरोध के आधार पर जिस समानता की बात पश्चिम ने कही है, उसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। वास्तव में सृष्टि में कोई भी दो चीजें समान नहीं हैं। विविधता ही सृष्टि का सौन्दर्य है। इसलिए सबकी एक जैसी आवश्यकताएँ भी नहीं हो सकतीं। आवश्यकताओं की भिन्नता भी स्तर पर निर्भर करेगी, इसलिए अनेक स्तर होना स्वाभाविक है। समानता लाने की बात परस्पर प्रतिद्वंद्विता और ईर्ष्या का निर्माण कर सकती है। असंतोष और संघर्ष को बढ़ा सकती है, किन्तु सर्वांगीण विकास का अवसर नहीं दे सकती। इसलिए समानता नहीं आत्मीयता के आधार पर सोचना शुरू किया। जैसे घर में छोटा बच्चा या वृद्ध– दोनों ही नहीं कमाते इसलिए कमानेवालों के समान नहीं हो सकते, किन्तु आत्मीयतापूर्वक चलनेवाले परिवार में कर्त्तव्य-बुद्धि से सबके लिए अपनी-अपनी आवश्यकता पूरी कर पाना संभव हो जाता है। इसीलिए किसी एक अंग पर ध्यान केन्द्रित करना ठीक नहीं है, समझदारी नहीं है। सम्पूर्ण का विचार और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार ही सर्वांगीण विकास कर सकता है। व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक, सहायक और अभिन्न हैं, दोनों अविरोधी सत्ताएँ हैं।'

दीनदयाल जी का 'एकात्मता' का यह विचार आज भी नितान्त प्रासंगिक व समीचीन है। जैसे सब जगह टकराव एवं संघर्षवाली दृष्टि संघर्ष और टकरावों को बढ़ाती है, ठीक वैसे ही समरसता-सामंजस्य-एकात्मतावाली दृष्टि ऐसे समाज का निर्माण करेगी जिसमें आनन्दपूर्वक अपनी आवश्यकताएँ पूरी करते हुए परम विकास संभव हो जाएगा। ■

छात्र संघ चुनाव में फिर अभाविप का दबदबा

राजस्थान विश्वविद्यालय में अभाविप की जय

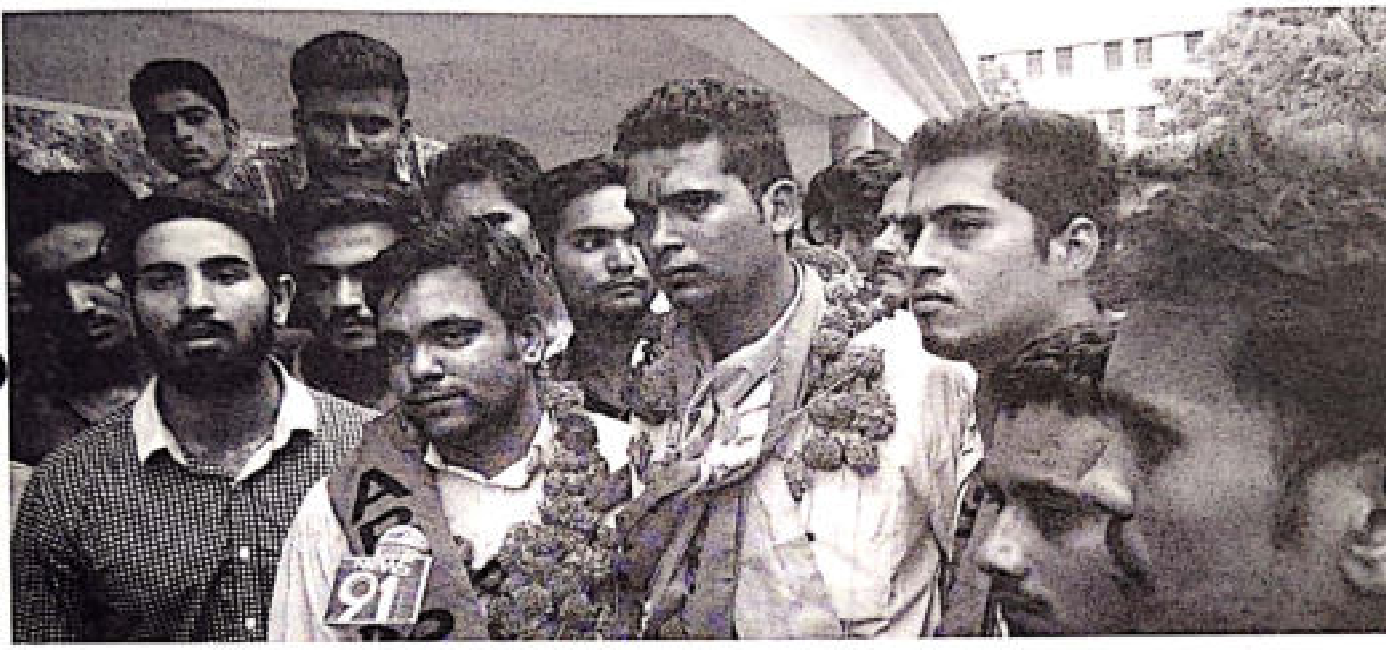

छात्र संघ चुनाव को लेकर चल रही जोर आजमाइश के बीच अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने एक बार फिर अपने विपक्षियों को धूल चटाई है। राजस्थान विश्वविद्यालय में भी अभाविप-प्रत्याशियों की जीत हुई है। छात्र संघ में तीन पदों पर अभाविप जबकि एक सीट पर निर्दलीय प्रत्याशी को जीत मिली।

अध्यक्ष पद पर निर्दलीय उम्मीदवार अंकित धायल ने अभाविप-प्रत्याशी अखिलेश पारिक को 36 मतों के मामूली अंतर से हराया। परिणाम को लेकर भी रोचकता बनी रही क्योंकि पहले विश्वविद्यालय-प्रशासन ने अभाविप-प्रत्याशी को विजयी घोषित कर दिया था। मगर निर्दलीय उम्मीदवार के समर्थकों ने रि-काउंटिंग की मांग की, जिसके बाद धायल अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

छात्र संघ की शेष तीन सीटों– उपाध्यक्ष, महासचिव और संयुक्त-सचिव पर अभाविप का कब्ज़ा रहा। अभाविप-पैनल से सुजाता मीणा उपाध्यक्ष पद पर, मोहन यादव महासचिव तथा मनीष चौधरी संयुक्त-सचिव नियुक्त हुए। इस बार राजस्थान विश्वविद्यालय के चुनावों में किसी भी पद पर एनएसयूआई का एक भी प्रत्याशी जीत हासिल नहीं कर पाया।

मतदाताओं की नब्ज माने जानेवाले युवा वर्ग ने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (अभाविप) पर अपना भरोसा कायम रखा है। विद्यार्थी परिषद् ने कोटा, बीकानेर और जोधुपुर में भगवा परचम लहराया। जोधपुर के जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के छात्र संघ चुनाव में तो अभाविप ने अध्यक्ष पद जीतने की हैट्रिक लगायी। परिषद् के के कुनाल सिंह भाटी ने एनएसयूआई के जगदीश जाखड़ को 884 मतों से हराया। जबकि विश्वविद्यालय के एपेक्स के अन्य तीन पदों पर एनएसयूआई उम्मीदवारों ने जीत दर्ज की। वहीं, उदयपुर के प्रतिष्ठित मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय में निर्दलीय छात्र मयूरध्वज सिंह चौहान ने अभाविप और एनएसयूआई के प्रत्याशियों को पटखनी देते हुए अध्यक्ष पद जीता।

महाविद्यालय-स्तर पर देखा जाए तो पाली, बीकानेर, झालावाड़, करौली, सीकर, भरतपुर और सिरोही ज़िलों में अभाविप ने धमाकेदार जीत दर्ज़ की। जबकि नागौर, बाँसवाड़ा में एनएसयूआई हावी रही। कोटा ज़िले के महाविद्यालयों में निर्दलीय-प्रत्याशियों ने अभाविप और एनएसयूआई को भी पीछे छोड़ दिया।

दीनदयाल जी का अर्थचिन्तन

डॉ. बजरंगलाल गुप्त

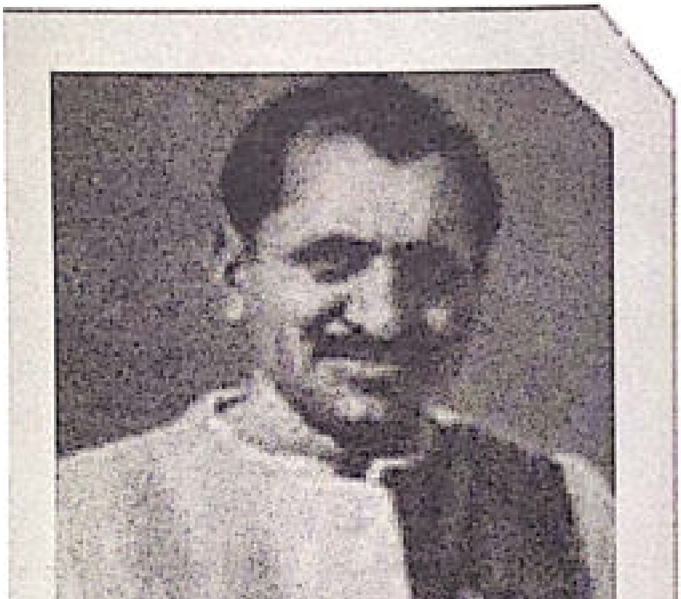

दीनदयाल जी वर्तमान तकनीकी एवं अकादमिक शब्दावली के संकीर्ण-सीमित अर्थों में अर्थशास्त्री तो नहीं थे, पर वे सचमुच अर्थवेत्ता थे, राष्ट्रोत्थान एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति के आकांक्षी कर्मरत द्रष्टा थे। उन्होंने आर्थिक परिदृश्य, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं एवं उनके समाधान के बारे में जो विचार प्रकट किये, उसे अर्थचिंतन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

मूलभूत मान्यताएँ

दीनदयाल जी का सम्पूर्ण अर्थचिंतन दो मूलभूत मान्याताओं पर आधारित था। एक, वे समाज व संसार के विभिन्न अवयवों-घटकों को अलग-थलग, पूर्णतया असम्बद्ध इकाइयों के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। वे तो व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि एवं परमेष्टि के बीच संबंधों की अखण्ड मण्डलाकार रचना के आधार पर विभिन्न इकाइयों के बीच सावयवी, परस्पर पूरकता के सम्बन्ध मानते हैं। दूसरे शब्दों में दीनदयाल जी समग्र-समन्वित एकात्म विश्वदृष्टि की मान्यता के आधार पर ही अपनी चिन्तन-प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं। दीनदयाल जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता व्यक्ति के सम्बन्ध में है। पूँजीवादी अर्थशास्त्र मनुष्य को एक अर्थलोलुप प्राणी मानकर चलता है। वहीं दूसरी ओर मार्क्स और साम्यवादी व्यवस्था ने मनुष्य को मात्र रोटीमय बना दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र 'आर्थिक मनुष्य' (इकोनोमिक मैन) की अवधारणा मानकर चलता है। इस चिन्तन का परिणाम हुआ कि हाड़-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल ही हो गया है। इसलिए उन्होंने कहा कि, मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर– इन चारों का समुच्चय है।

विकास का समग्र चिंतन

दीनदयाल जी कहा करते थे कि आज का पश्चिम-प्रेरित अर्थशास्त्र अर्थ-काम केन्द्रित अर्थचिंतन है। यह अधिकाधिक धनोत्पादन और अधिकाधिक उपभोग के एक वर्तुल चक्र में ही घूमता रहता है, अतः यह अधूरा एवं भोगवादी चिन्तन है। उनका दृढ़ मत था कि जीवन के विभिन्न आदर्शों तथा देश-काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए। हम मार्शल और मार्क्स से बँधकर विचार नहीं कर सकते। हमें विकास एवं अर्थतन्त्र के एक ऐसे प्रारूप पर काम करना होगा जिसमें मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा की आवश्यकता की पूर्ति और उसके सर्वांगीण विकास

का अवसर मिल सके। इस दृष्टि से हमारे मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में चतुर्विध पुरुषार्थ की कल्पना रखी है। हमें इस संकल्पना की आज की आवश्यकता एवं सन्दर्भ के अनुसार व्याख्या एवं क्रियान्वयन करना होगा। अमेरिकावालों की दृष्टि में, 'ईमानदारी सर्वश्रष्ठ व्यावसायिक नीति है।' (ऑनिस्टी इज द बेस्ट बिजनेस पॉलिसी)। यूरोपवालों के अनुसार 'ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ नीति है' (ऑनिस्टी इज द बेस्ट पॉलसी) किन्तु भारत की परम्परा एक कदम आगे बढ़कर कहती है कि, 'ईमानदारी नीति नहीं अपितु सिद्धांत है। (ऑनेस्टी इज नॉट ए पालिसी बट ए प्रिंसिपल)। यहीं भारत और संसार के अन्य देशों के चिन्तन में अंतर आता है। इस प्रकार दीनदयाल जी के विचारों के अनुसार हमें एक ऐसी अर्थरचना एवं अर्थव्यवस्था को विकसित करना होगा जिसमें धर्म और अर्थ, सदाचार और समृद्धि– दोनों साथ-साथ चल सकें।

न्यूनतम आवश्यकताएँ

दीनदयाल जी निर्देशित करते हैं कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारण्टी एवं व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए। न्यूनतम आवश्यकताओं में वे रोटी (संतुलित व पौष्टिक आहार), कपड़ा (ऋतु के अनुसार पर्याप्त मात्रा में), मकान (पीने का पानी एवं सेनिटेशन की सुविधाओं सहित) शिक्षा, स्वास्थ्य (समुचित चिकित्सा-सुविधाओं समेत) एवं सुरक्षा को सम्मिलित करते हैं।

सबको काम एवं रोज़गार

अब प्रश्न यह है कि इन न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन-सामग्री तथा वस्तुएँ व सेवाएँ कहाँ से और कैसे मिलेंगी ? यह तभी संभव है जब देश के व्यक्ति पुरुषार्थ करें और सब सक्षम एवं स्वस्थ व्यक्ति को काम (रोज़गार) मिले। दीनदयाल जी कहते हैं कि मानव को पेट और हाथ– दोनों मिले हुए हैं। यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। अतः 'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए। दीनदयाल जी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि प्रत्येक को वोट-जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है, वैसे ही प्रत्येक को काम– यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदण्ड है। दीनदयाल जी का जोर पूर्ण रोज़गार अथवा 'हर हाथ को काम देनेवाली अर्थव्यवस्था बनाने पर था।

दीनदयाल जी का सम्पूर्ण अर्थचिंतन दो मूलभूत मान्याताओं पर आधारित था। एक, वे समाज व संसार के विभिन्न अवयवों-घटकों को अलग-थलग, पूर्णतया असम्बद्ध इकाइयों के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। वे तो व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि एवं परमष्टि के बीच संबंधों की अखण्ड मण्डलाकार रचना के आधार पर विभिन्न इकाइयों के बीच सावयवी, परस्पर पूरकता के सम्बन्ध मानते हैं।

उत्पादन-तंत्र एवं दिशा

देश व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सतत विकास के लिए वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होते रहना चाहिए। इस सम्बन्ध में दीनदयाल जी ने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। 1. दीनदयाल जी के अनुसार पश्चिम का अर्थशास्त्र उपभोग की सतत वर्धमान आकांक्षा व लालसा को पूरा करने के लिए अमर्यादित उत्पादन-वृद्धि पर जोर देता है। उसे खपाने के लिए इच्छाएँ पैदा करना और बाज़ार तलाशने का काम किया जाता है। इसके लिए तमाम उत्तेजक, मांग-परिवर्तक एवं प्रतियोगी - भ्रमात्मक (मेनीपुलेटिव एण्ड कम्पटिटिव) विज्ञापनों, आकर्षक पैकेजिंग तथा बिक्री-संवर्धन के विभिन्न तौर-तरीकों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार अब उपभोग के लिए उत्पादन से भी आगे बढ़कर उत्पादन के लिए उपभोग का अर्थशास्त्र चल पड़ा

है, यह विनाशोन्मुख है। इसे बदलकर आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति के लिए संसाधनों की मितव्ययी उत्पादन-प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए। 2. हमें उत्पादन में वृद्धि तो अवश्य करनी है, पर ऐसा करते समय प्रकृति या प्राकृतिक संसाधनों की मर्यादा को न भूलें। इसका अर्थ है कि हमें प्रकृति के साथ उच्छृंखलता करनेवाली उत्पादन-पद्धति व टेक्नोलॉजी से बचना होगा तथा पुनरुत्पादनीय ऊर्जा-स्रोतों के प्रयोग एवं पर्यावरण-पोषक टेक्नोलॉजी पर अधिक ध्यान देना होगा। 3. दीनदयाल जी का आग्रह स्वदेशी, स्वावलंबी एवं विकेन्द्रित अर्थतन्त्र एवं उत्पादन-तन्त्र अपनाने पर था। वह स्वदेशी को प्रतिगामी एवं कालबाह्य संकल्पना माननेवालों के विचारों से कतई सहमत नहीं थे। उनका स्पष्ट मत था कि हमें अपना देश, अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही समाधान के मार्ग तलाशने होंगे। हमें इस प्रकार के अर्थतन्त्र एवं उत्पादन-तन्त्र की रचना करनी होगी जिसमें स्थानीय संसाधनों, स्थानीय कौशल और स्थानीय श्रम के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति की जा सके। हमें विदेशी पूँजी, विदेशी टेक्नोलॉजी एवं विदेशी माल कम-से-कम और बहुत अनिवार्य होने पर ही प्रयोग करना चाहिए। उनके अनुसार जो अपना है (अपनी पद्धति, कार्यशैली, तकनीक-टेक्नोलॉजी, जीवनशैली आदि), उसे युगानुकूल बनाकर और जो पराया विदेशी है (विदेशी पद्धति, तकनीक-टेक्नोलॉजी आदि) उसे देशानुकूल बनाकर अपनाना चाहिए। दीनदयाल जी बड़ी-बड़ी उत्पादन-इकाइयों एवं बड़े-बड़े उद्योगों के सहारे ही अर्थव्यवस्था चलाने के पक्षधर नहीं थे। इससे देश में केन्द्रीयकरण पनपता है जो विषमता और बेरोजगारी को बढ़ाता है। अतः उनके अनुसार हमें व्यक्ति व परिवार-आधारित, लघुयंत्राधिष्ठित आर्थिक विकेंद्रीकरण की प्रणाली विकसित करने पर जोर देना चाहिए और श्रमप्रधान विकेन्द्रित ग्रामोद्योगों को सुदृढ़ करना चाहिए।

कृषि एवं उद्योग

दीनदयाल जी कृषि-क्षेत्र में प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादकता स्तर से बहुत चिंतित थे और दोनों दृष्टियों से उत्पादकता स्तर में वृद्धि करने के बारे में उन्होंने अनेक सुझाव दिए थे। उनका मानना था कि कृषि-विकास की दृष्टि से हमें प्राविधिक (टेक्निकल) है एवं संस्थागत (इंस्टीट्यूशनल)– दोनों प्रकार के कार्यक्रम साथ-साथ चलाने होंगे, प्राविधिक दृष्टि से हमें आधुनिक कृषि-टेक्नोलाजी का समुचित मूल्यांकन करते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप कृषि-पद्धति में सुधार करना होगा। हमारे देश की खेती अधिकांशतया मानसून की कृपा पर निर्भर करती है जो अनियमित है और सब जगह और सब समय

समान नहीं रहती। अतः उन्होंने अदेवमात्रिका कृषि की संकल्पना प्रस्तुत की जिसका अर्थ है कि हमे कृषि को मानसून या इंद्रदेव की कृपा पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। इस दृष्टि से वह पर्याप्त मात्रा में छोटी सिंचाई-योजनाओं, कुओं, तालाबों, बावड़ियों एवं जलबन्ध (चैक डैम्स) के विस्तार पर अधिक बल देने के पक्षधर थे। संस्थागत कार्यों की दृष्टि से भूस्वामित्व, भूमि के उपविभाजन एवं अपखण्डन को रोककर आर्थिक जोत बनाए रखने, सहकारी खेती, विपणन, भण्डारण, साख-सुविधाओं, मूल्य-निर्धारण की दृष्टि से भी समुचित व्यवस्थाएँ करनी होगी।

दीनदयाल जी कृषि के साथ साथ औद्योगिक विकास के बारे में भी पूर्ण सचेत थे। उनका मानना था कि बढ़ती जनसंख्या का खेती पर से भार घटाने, कृषि में उत्पन्न कच्चे माल का उपयोग करने और कृषि को आवश्यक साधन-सामग्री, यंत्र-औज़ार प्रदान करने, रोज़गार के अवसरों में वृद्धि करने, देश की निर्यात-क्षमता बढ़ाने, स्वावलंबन आदि कई दृष्टियों से औद्योगीकरण अत्यंत आवश्यक है। किन्तु वे कुछ विशेष क्षेत्रों एवं विशेष वस्तुओं के उत्पादन को छोड़कर, शेष सबके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर श्रमप्रधान छोटे उद्योगों के अधिक पक्षधर थे। उद्योगों के क्षेत्र में भी दीनदयाल जी ने 'अपरमात्रिक उद्योग नीति' की संकल्पना दी थी, इसका तात्पर्य स्वावलंबन से कुछ अधिक उत्पादन करनेवाली उद्योग-नीति से है ताकि शेष बचे अतिरेक को निर्यात करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। उनके औद्योगीकरण के सिद्धांत को संक्षेप में निम्नलिखित सूत्र से बताया जा सकता है : ज क य=इ।

दीनदयाल जी का स्पष्ट मत था कि हमें अपना देश, अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही समाधान के मार्ग तलाशने होंगे। हमें इस प्रकार के अर्थतन्त्र एवं उत्पादन-तन्त्र की रचना करनी होगी जिसमें स्थानीय संसाधनों, स्थानीय कौशल और स्थानीय श्रम के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति की जा सके। हमें विदेशी पूँजी, विदेशी टेक्नोलॉजी एवं विदेशी माल कम-से-कम और बहुत अनिवार्य होने पर ही प्रयोग करना चाहिए।

यहाँ, ज = जन, क = कर्म की व्यवस्था, य = यंत्र, इ = समाज का इच्छित संकल्प आधुनिक औद्योगीकरण में 'य' (यंत्र) सबको नियंत्रित करता है। हमें इसके स्थान पर ऐसी अर्थव्यवस्था निर्माण करना है जो 'ज' (जन) और 'इ' (समाज का इच्छित संकल्प) के नियंत्रण में 'क' (कर्म की व्यवस्था) और 'य' (यंत्र) का नियोजन करे। आज सम्पूर्ण उत्पादन-प्रणाली एक मशीन पर केन्द्रित हो गई है। हमारी मशीन हमारी आवश्यताओं के अनुकूल ही चाहिए। वह हमारे सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन-मूल्यों की पोषक नहीं तो कम-से-कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।

दीनदयाल जी का यह भी स्पष्ट मत था कि उद्योगों में पूँजीपति एवं बड़ी कंपनियों में शेयर-होल्डर्स के साथ-साथ मज़दूरों का भी स्वामित्व स्वीकार किया जाए और उन्हें लाभ एवं प्रबंध में भागीदार बनाया जाये।

अर्थ-दृष्टि एवं अर्थ-संस्कृति

अर्थ एवं अर्थार्जन के संबंध में हमारा क्या दृष्टिकोण रहे, इस बारे में भी दीनदयाल जी ने बहुत गहराई से चिंतन किया था। उनका मानना है कि मनुष्य एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में धन का होना आवश्यक है। अनुभव यह है कि कई बार अर्थ के अभाव में व्यक्ति के मन में कुंठा, निराशा एवं आक्रोश पैदा हो जाता है और वह अनाचार, अत्याचार, चोरी- डकैती, लूट-खसोट एवं अन्य अनेक प्रकार के आर्थिक अपराधों में संलग्न हो जाता है। इसीलिए तो हमारे यहाँ कहा गया है कि '**बुभुक्षितः किं न करोति पापम्, क्षीणाः नराः निष्करुणाः भवन्ति।**' (भूखा व्यक्ति कौन-सा पाप नहीं करता, भूख से पीड़ित कमज़ोर व्यक्ति निर्दयी हो जाता है)। अर्थ के अभाव के समान ही अर्थ का प्रभाव भी समाज के लिए घातक हो सकता है। अर्थ के प्रभाव से आशय है : इससे लोगो के जीवन में धनपरायणता आ जाती है, परिणामस्वरूप प्रत्येक कार्य के लिए धन की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होने लगती है। अंततोगत्वा धन का प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव भी उत्पन्न कर देता है।

अतः अर्थ के अभाव एवं अर्थ के प्रभाव– दोनों से बचना चाहिए। इसके लिए दीनदयाल जी ने **अर्थायाम** नाम से एक नयी

संकल्पना दी है। उनके अनुसार, समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव– दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है। एक अन्य दृष्टि से अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन को भी अर्थायाम कहा जा सकता है।

दीनदयाल जी का मानना था कि अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन मानवीय उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पश्चिमी अर्थव्यवस्था में (पूँजीवादी एवं समाजवादी– दोनों में) मौद्रिक मूल्य एवं धनार्जन को ही अत्यंत महत्त्व का स्थान प्राप्त है। इसीलिए उनका नीतिगत नारा है, कमानेवाला खायेगा। अतः भारतीय चिन्तन ने मानवीय दृष्टिकोण से अपने लिए जो दिशा-सूत्र (नारे) निश्चित किए हैं, वे हैं– 'कमानेवाला खिलायेगा' तथा जो जन्मा सो खायेगा। इसका अर्थ है कि कमानेवाला परिवार में बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज, अतिथि आदि सबके भरण-पोषण की चिंता करेगा और देश में अभावग्रस्त, निर्धन-निर्बल व्यक्ति के निर्वाह का भी समाज का दायित्व होगा, इसी में से आगे चलकर 'अन्त्योदय' के लिए आर्थिक नीति बनाने की दिशा सामने आयी।

दीनदयाल जी ने अपनी दूरदृष्टि से इस बात को भी भली प्रकार समझ लिया था कि हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग नहीं, बल्कि संयमित उपभोग ही होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आज हम उपभोक्तावाद पर आधारित उपभोग की जिस शैली एवं तौर-तरीकों को अपनाते जा रहे हैं, उसका पर्यावरण एवं सामजिक– दोनों ही दृष्टियों से लम्बे समय तक टिक पाना संभव नहीं लगता। सीमित-संयमित धारणक्षम-व्यवहारक्षम उपयोगशैली एवं जीवनशैली अपनाकर ही धारणक्षम मंगलकारी विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

दीनदयाल जी एक ऐसी अर्थरचना के पक्षधर थे जिसमें कार्य की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति न होकर कर्तव्य-सुख हो। व्यक्ति को दिया जानेवाला पारिश्रमिक उसके द्वारा किए गए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके योगक्षेम की व्यवस्था मानी जाये। इसके लिए अर्थचक्र को समाजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र (नीतिशास्त्र) के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है। कुल मिलाकर, वह उपभोक्तावाद, स्पर्धावाद, वर्ग-संघर्ष पर आधारित अर्थरचना को ठीक नहीं मानते। उनके अनुसार मनुष्य की प्राकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें प्रकृति की मर्यादा के प्रकाश में अधिकाधिक उत्पादन, सामान वितरण एवं संयमित उपभोग की प्रवृत्ति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्य है। वे देश व समाज को अर्थ-विकृति से हटाकर अर्थ-संस्कृति की दिशा में ले जाना चाहते थे। आज पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति या तो मात्र अर्थपरायण बनकर रह गया है या फिर अपने निजी व्यक्तित्व को नष्ट कर वह एक नंबर बनता जा रहा है। दूसरी ओर साम्यवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रेरणा व पहल को समाप्त कर उसे जेल के एक कैदी के समान बना दिया गया है। इस प्रकार दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोता जा रहा है। अतः हमें ऐसी अर्थरचना बनानी होगी जिसमें व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले और वह पुरुषार्थशील बनकर राष्ट्र के सार्वजनीय मंगल में अपनी पूर्णक्षमता के साथ योगदान कर सके।

(लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर क्षेत्र के माननीय संघचालक हैं)

Rio 2016™
PARALYMPIC GAMES

संघर्ष के सितारे

आकाश कुमार राय

हौसलों में हो उड़ान तो कुछ भी नामुमकिन नहीं होता। जज्बा और जुनून जीत की ऐसी इबारत लिख देते हैं कि जीत के किस्से मिसाल बन जाते हैं। लाख कमियों और कठिनाइयों के बावजूद इंसान अपनी मंज़िल के लिए प्रयासरत होता. और खुद पर भरोसा भी रखता है। हौसलों को अपने पंख बनाकर वह ऐसी उड़ान भरता है जिसकी ऊँचाई तक पहुँचना किसी के लिए भी आसान नहीं होता। चाहे कला के क्षेत्र की बात हो या फिर जीवन-यापन के लिए नौकरी करने की। हौसला हर घड़ी इनसान को अपनी पहुँच से ऊपर तक मेहनत करने को इस कदर प्रोत्साहित करता है कि परिणाम नये आयाम स्थापित करनेवाले बन जाते हैं।

ऐसा ही कुछ नज़ारा ब्राजील की राजधानी रियो डी जनेरियो में चल रहे पैरालंपिक खेलों में देखने को मिला जब भारतीय खिलाड़ियों ने एक के बाद एक चार पदक भारत की झोली में डाल दिए। ये पदक इसलिए भी ख़ास हैं क्योंकि ये तब आये जब रियो ओलंपिक में ज्यादा पदक जीतने की भारतीय उम्मीदों को झटका लगा। पैरालंपिक खिलाड़ियों ने खुद को उस कसौटी पर कसा, जहाँ उनकी प्रतियोगिता दूसरों से कम स्वयं से ज्यादा थी। उन्हें दुनिया को दिखाने से ज्यादा खुद से किए वायदे को पूरा करना था, जो उन्होंने स्वयं से किया था कि तमाम कमियों के बावजूद वे विश्वपटल पर खुद को साबित करेंगे। और पदक जीतकर उन्होंने दर्शा दिया कि वे कितने अलग हैं।

रियो पैरालंपिक 2016 में भारतीय खिलाड़ियों का इतिहास रचने का सिलसिला प्रतियोगिता के दूसरे दिन ही शुरू हो गया। जब ऊँची कूद प्रतियोगिता टी-42 में भारत ने स्वर्ण और कांस्य पदक पर कब्ज़ा जमाया। तमिलनाडु के मरियप्पन थांगावेलू ने 1.89 मी. की कूद लगायी और स्वर्ण पदक पर कब्ज़ा जमाते हुए इतिहास रचा। मुरलीकांत पेटकर (स्वीमिंग 1972 हेजवर्ग) और देवेंद्र झाझरिया (भाला फेंक, एथेंस 2004) के बाद मरियप्पन स्वर्ण जीतनेवाले तीसरे भारतीय बने। जबकि उत्तरप्रदेश के वरुण भाटी ने 186 मी. की जंप लगाते हुए कांस्य पदक अपने नाम किया। वहीं, हरियाणा की दीपा मलिक ने शॉटपुट स्पर्धा में अपने छह प्रयासों में 4.61 मीटर की सर्वश्रेष्ठ थ्रो के साथ रजत पदक जीता।

रियो पैरालंपिक में भारत के पदकों की संख्या में इज़ाफा करते हुए देवेंद्र झाझरिया ने भाला फेंक प्रतिस्पर्धा में वर्ल्ड रिकार्ड बनाते हुए स्वर्णपदक जीता है। देवेंद्र ने अपना ही रिकार्ड तोड़ते हुए 63.97 मीटर भाला फेंककर विश्व कीर्तिमान बनाया। इससे पहले 2004 में हुए एथेंस पैरालंपिक में भी देवेंद्र स्वर्ण पदक जीत चुके हैं, तब 62.15 मीटर जेवलिन फेंका था। इस तरह रियो पैरालंपिक में भारत के खाते में दो स्वर्ण, एक रजत और एक कांस्य पदक के साथ कुल चार पदक दर्ज़ हैं।

पैरालंपिक में पदक आने के बाद आज देश और देशवासियों को अपने इन खिलाड़ियों पर गर्व हो रहा है। किन्तु इन पदकों के लिए खिलाड़ियों की मेहनत और लगन से लोग अब भी अपरिचित हैं। पदक जीतने पर खुशी और नहीं जीतने

पर निराशा के बीच खिलाड़ी सदैव अपना बेस्ट देते हैं इसका ध्यान कोई नहीं रखता। मरियप्पन थंगावेलु गरीबी और शारीरिक अक्षमता से लड़ते हुए इस मुकाम तक पहुँचे हैं। पाँच वर्ष की उम्र में सड़क हादसे में पैर गँवानेवाले मरियप्पन ने कभी भी शारीरिक कमियों को अपने जज्बे के आड़े नहीं आने दिया। वहीं, उसकी माँ आज भी सब्जियाँ बेचती हैं जिससे उनके परिवार का गुजारा होता है। ऐसे में आर्थिक और सामाजिक लड़ाइयाँ लड़ते हुए मरियप्पन ने खुद पर भरोसा रखा और आज देश का मान बढ़ानेवाली ऐतिहासिकता का प्रमाण बने।

वहीं, उत्तरप्रदेश के रहनेवाले वरुण भाटी का एक पैर पोलियो की वजह से खराब हो गया था। मगर वह रुके नहीं। दिव्यांगता को अपनी लाचारी नहीं बनने दी। बल्कि भाटी ने अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति की बदौलत 'बाधाओं के पार' अपने सपने को साकार किया। आज वरुण भाटी ओलंपिक में कांस्य पदक विजेता हैं जिस पर परिजनों के साथ देशवासियों को भी गर्व है।

ऐसा ही कुछ 36 साल की उम्र में खेलना शुरू करनेवाली दो बच्चों की माँ दीपा मलिक के साथ भी घटित है। दीपा के कमर से नीचे का हिस्सा लकवाग्रस्त है। 17 साल पहले रीढ़ में ट्यूमर के कारण उनके 31 ऑपरेशन हुए थे और उनकी कमर और पाँव के बीच 183 टाँके लगे थे, दीपा का चलना असंभव हो गया था। मगर उसी दीपा ने रियो पैरालंपिक खेलों में रजत पदक जीतकर इतिहास रच दिया। दीपा ने व्हीलचेयर पर बैठकर शटपुट एफ-53 स्पर्धा में रजत पदक जीता। इतना ही नहीं, पैरालंपिक में पदक जीतनेवाली देश की पहली भारतीय महिला खिलाड़ी भी बन गयीं। 45-वर्षीया दीपा ने साबित किया कि हौसला है तो हुनर को परवाज मिल ही जाता है।

कहते हैं कि कुछ कर गुजरने का जज्बा हो तो मंजिलें झुककर सलाम करती हैं, जो पैरालंपिक प्रतियोगिता में दिखा भी। देश और दुनिया के इन दिव्यांग (शारीरिक अक्षम) इंसानों ने भी अपने जज़्बे से अपनी मंज़िल को अपने सामने झुका दिया है। बहरहाल, जिस तरह मुफ़लिसी और मायूसी के अंधेरों से निकलकर इन दिव्यांग खिलाड़ियों ने अपने हौसलों से खुद का आसमान तैयार किया है, जिस तरह इन खिलाड़ियों ने अपनी ग़रीबी और अक्षमताओं को पीछे ढकेल दिया, वह आनेवाली पीढ़ी को अपने जज्बों और हौसलों पर भरोसा करने का पाठ साबित होगा। अब वह दिन दूर नहीं जब आर्थिक और शारीरिक रूप से कमज़ोर बच्चे समझदार होते ही स्टेडियमों का रुख खुद कर लिया करेंगे। उनके लिए बस एक ही बात मायने रखेगी कि हौसला और हिम्मत हो तो दिव्यांगता तरक्की में आड़े नहीं आती। शारीरिक अक्षम पर हुनरमंद खिलाड़ियों ने साबित कर दिया है कि आगे बढ़ने का जोश और जुनून अगर दिल में है तो जज्बा हर कामयाबी को आपकी झोली में डाल देगा।

(लेखक राष्ट्रीय छात्रशक्ति पत्रिका के संपादन मंडल सदस्य हैं।)

■

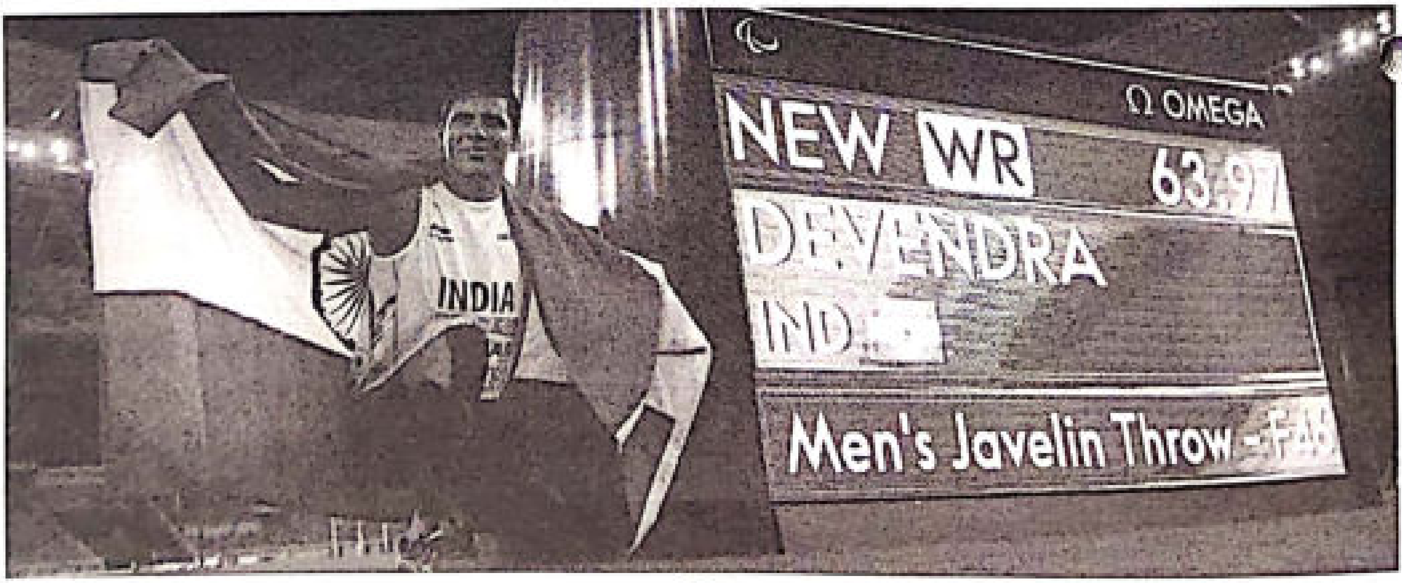

लोकधर्मी-प्रयोगधर्मी गाँधी को इसी दृष्टि से परखें

डॉ. जयप्रकाश सिंह

यह एक रोचक विषय है कि भारतीय सार्वजनिक विमर्श में गाँधी की उपस्थिति हर जगह महसूस की जाती है, हर पक्ष उनके विचार और व्यक्तित्व पर चर्चा करता है,लेकिन कोई भी पक्ष उन्हें अपना नहीं मानता, उन्हें विरोधी खेमे में रखता है। कट्टर मुसलमानों के लिए वह चतुर हिंदू नेता थे, तो कुछ हिंदू उन्हें मुसलमानों का पक्षधर मानते रहे हैं। हरिजनों के लिए वह सवर्णवादी थे, तो सवर्णों के लिए हरिजनवादी। साम्यवादियों के लिए वह 'पूँजीवादी एजेंट' थे और पूँजीवादी उन्हें मशीनों का विरोध कर समानता का स्वप्न देखनेवाला साम्यवादी मानते थे। संतों के लिए वह एक व्यावहारिक नेता थे और राजनेताओं के लिए अव्यावहारिक संत। आधुनिकतावादी उन्हें पिछड़ेपन का प्रतीक मानते हैं और पुरातत्त्वपंथियों के लिए वह धर्म भ्रष्ट करनेवाले परिवर्तनों के वाहक रहे हैं। अकादमिकों के लिए वह कम पढ़े-लिखे व्यक्ति और सामान्य व्यक्तियों के लिए उच्च कोटि के दार्शनिक और साधक। आखिर एक ही व्यक्ति के प्रति इतने विरोधाभासी निष्कर्ष कैसे निकल सकते हैं? यह एक जटिल प्रश्न है और गाँधी के संदर्भ में निकाले जानेवाले निष्कर्षों की एकांगिकता की तरफ़ संकेत भी। उन्हें जिन प्रचलित दृष्टिकोणों या उपलब्ध उपकरणों के जरिए समझने की कोशिश की जाती रही है, वे बौने साबित हुए हैं। अभी तक गाँधी को उनके मौलिक-लोकधर्मो और प्रयोगधर्मी परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने के बजाय प्रक्षेपण-पद्धति से देखने-समझने की कोशिश अधिक हुई है।

यदि किसी विचार या व्यक्ति को प्रक्षेपण-पद्धति से समझने की कोशिश की जाती है, तो ग़लत निष्कर्ष निकलने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक अध्येता अपने पूर्वाग्रहों का संबंधित व्यक्ति या विचार पर प्रक्षेपण करता है और वही निष्कर्ष निकाल लेता है, जो वह निकालना चाहता है। गाँधी-जैसे व्यक्ति के संदर्भ में तो ग़लत निष्कर्ष की संभावना और भी बढ़ जाती है, क्योंकि उनके चिंतन का कैनवास बहुत बड़ा है और मौलिक भी। उनकी विशालता सभी चिंतनधाराओं को स्पर्श करती है, लेकिन उनकी सत्य के साथ प्रयोग करने की आदत, सभी पक्षों द्वारा उन्हें गलत समझे जाने की संभावना को बढ़ा देती है।

गाँधी स्वयं में एक अलग 'टाईप' हैं और उस 'टाईप' के आधारभूत तथ्यों को समझे बिना उनकी सीमाओं और संभावनाओं का सम्यक् आकलन नहीं किया जा सकता। गाँधी अधेड़ उम्र में जब भारत वापस आते हैं, तो गोखले की सलाह पर लगभग पाँच वर्ष भारतीय लोक को समझने में लगाते हैं। इस अवधि में लोक के जरिए सत्य से साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहे थे और समाज के बारे में अपनी अवधारणाओं को गढ़ रहे थे। बाद में भी वह लोक से वह गहरे से जुड़े रहे यानी उनकी

अवधारणाओं का स्रोत किताब और शास्त्र से कहीं अधिक लोक था। लोक पर इस निर्भरता के कारण ही उनकी संकल्पनाओं में ऐसी कमज़ोरी के दर्शन होते हैं,जो लंबे समय से आक्रांत समाज में हो सकते हैं। भारतीय समाज की विशिष्ट संरचना तथा सनातन आधारों पर अधिष्ठित संस्कृति के कारण लंबी पराधीनता के बाद भी तत्कालीन समाज में कुछ परंपराएँ इतनी स्वस्थ रूप में प्रवाहमान थीं कि उनके शुद्ध तत्त्व से परिचित हुआ जा सकता है। दूसरी तरफ कुछ परंपराएँ सड़ांधता का शिकार हो चुकी थीं कि उन्हें आसानी से त्यागा जा सकता था। इन दोनों छोरों के बीच बहुत कुछ ऐसा था, जिनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता अथवा उसके बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता था। इनके बारे में टिप्पणी करने के लिए पर्याप्त शोध की आवश्यकता थी। गाँधी ने स्वस्थ को स्वीकारा, अस्वस्थ को नकारा एवं कुछ का शोधन किया। स्वस्थ और अस्वस्थ को पहचानने-स्वीकारने-नकारने में वह काफ़ी हद तक सफल रहे, लेकिन अवशेष रूप में उन्हें आंशिक सफलता ही मिली।

उदाहरणतः राजनीति और धर्म के अंतर्संबंधों के बारे में उनकी संकल्पना को लिया जा सकता है। वह मानते थे कि राजनीति एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्य है। राजनीति और धर्म के का पृथक्करण से अंततः राजनीति स्वार्थी हो जाती है और धर्म पंगु बन जाता है। परंतु राजनीति की संपूर्ण जटिलताओं को स्वीकार करते हुए भी धार्मिक बना रहा जा सकता है, वह इस बात को स्वीकार नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने उनकी राजनीति 'साम' तक सीमित रखी। 'दाम', 'दण्ड', 'भेद' के बारे में उनके मन में हिचक बनी रही। इसी हिचक के कारण 'गीता' तो आजीवन उनकी मार्गदर्शक बनी रही, लेकिन जिस महाभारत का यह हिस्सा है, उसे उन्होंने मानसिक-मनोवैज्ञानिक युद्ध करार दिया। वह इस बात को स्वीकार नहीं कर सके कि कृष्ण-जैसा तत्त्वदर्शी, धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए 'युद्धाय कृतनिश्चय' के लिए प्रेरित कर सकता है।

यदि इसी ग्रंथ के शान्तिपर्व में उल्लिखित 'राजधर्म' की महत्ता और जटिलता से उनका पूर्ण परिचय हुआ होता, तो संभवतया यह हिचक टूट जाती। ऐसा न हो पाने के दो कारण रहे होंगे। पहला गाँधी की लोकधर्मिता और दूसरा भारतीय संकल्पनाओं के विस्तृत शोध-प्रबंधों का अभाव। गाँधी लोक जीवनदर्शन और जीवनशैली से तत्त्व खींचकर संकल्पनाएँ गढ़ते थे। उस समय लोकजीवन में राजधर्म के प्रति उदात्त भाव तो बचा हुआ था, लेकिन हिंसा के प्रति विराग घृणा के स्तर तक विद्यमान था। इस कारण उनकी राजनीतिक अवधारणा शिखर तक नहीं पहुँच सकी। दूसरे लोकधर्मी होने के बावजूद गाँधी अध्ययन भी खूब करते थे। 1924 की उनकी जेल डायरी उनकी अध्ययन-क्षमता का प्रमाण है। अध्ययन की इस प्रवृत्ति के बावजूद यदि वह राजनीति की भारतीय संकल्पना को सम्यक् ढंग से नहीं समझ सके तो उसका कारण भारतकेंद्रित अध्ययन का शैशवावस्था में होना था। यदि उन्हें भारतीय संकल्पनाओं पर विस्तृत सामग्री उपलब्ध हो पाती, तो शायद उनकी वैचारिक यात्रा पूर्णता को प्राप्त हो पाती। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनकी इन सीमाओं के बावजूद गाँधी ने भारतीय संकल्पनाओं को सामाजिक रूप देने और उन्हें सार्वजनिक विमर्श में प्रतिष्ठित करने का भगीरथ प्रयास किया था।

लोकधर्मिता के साथ प्रयोगधर्मिता भी विशिष्ट गुण था। बने-बनाए सत्यों के बजाय वह स्वनिर्मित अनुभूत सत्यों पर विश्वास करते थे और 'सत्य के साथ प्रयोग' करते रहे। एक स्पष्ट सभ्यतागत समझ के बावजूद वह व्यावहारिक धरातल पर निरंतर प्रयोगधर्मी रहे। इसीलिए एक तरफ वह 1909 में लिखी गई 'हिंद स्वराज' में अपने जीवन के अंतिम पड़ाव पर केवल एक शब्द बदलने के लिए तैयार हुए थे। दूसरी तरफ एक चौरी-चौरा काण्ड के कारण जिस गाँधी ने पूरे असहयोग आंदोलन को ठप्प कर दिया था, वही गाँधी भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हुई राष्ट्रव्यापी हिंसा के खिलाफ मौन रहे। इसी तरह जीवन के सांध्य काल में ब्रह्मचर्य को लेकर उनके प्रयोग भी उनकी स्वीकार्यता और छवि– दोनों को प्रभावित कर रहे थे, फिर भी उन्होंने प्रयोगधर्मिता के लिए आवश्यक साहस को बनाए रखा।

गाँधी की लोकधर्मी और प्रयोगधर्मी प्रवृत्ति उन्हें विशिष्ट और गतिशील बनाती है। इन दोनों प्रवृत्तियों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण वह महात्मा कहलाए। इस विशेषण में उनका आकलन भी छिपा हुआ है। रूढ़ मान्यताएँ उन्हें पूजनीय बना देती हैं या दयनीय। उन्हें उत्कृष्ट पूर्णता या निकृष्ट अपूर्णता का प्रतीक मानने के बजाय पूर्णता की तरफ अग्रसर एक अपूर्ण, लेकिन प्रतिबद्ध यात्री मानना ज्यादा न्यायसंगत होगा।

(लेखक 'दिव्य हिमाचल' समाचार-पत्र के फ़ीचर संपादक हैं)

उत्तराखंड छात्र संघ चुनाव में विद्यार्थी परिषद् की धूम

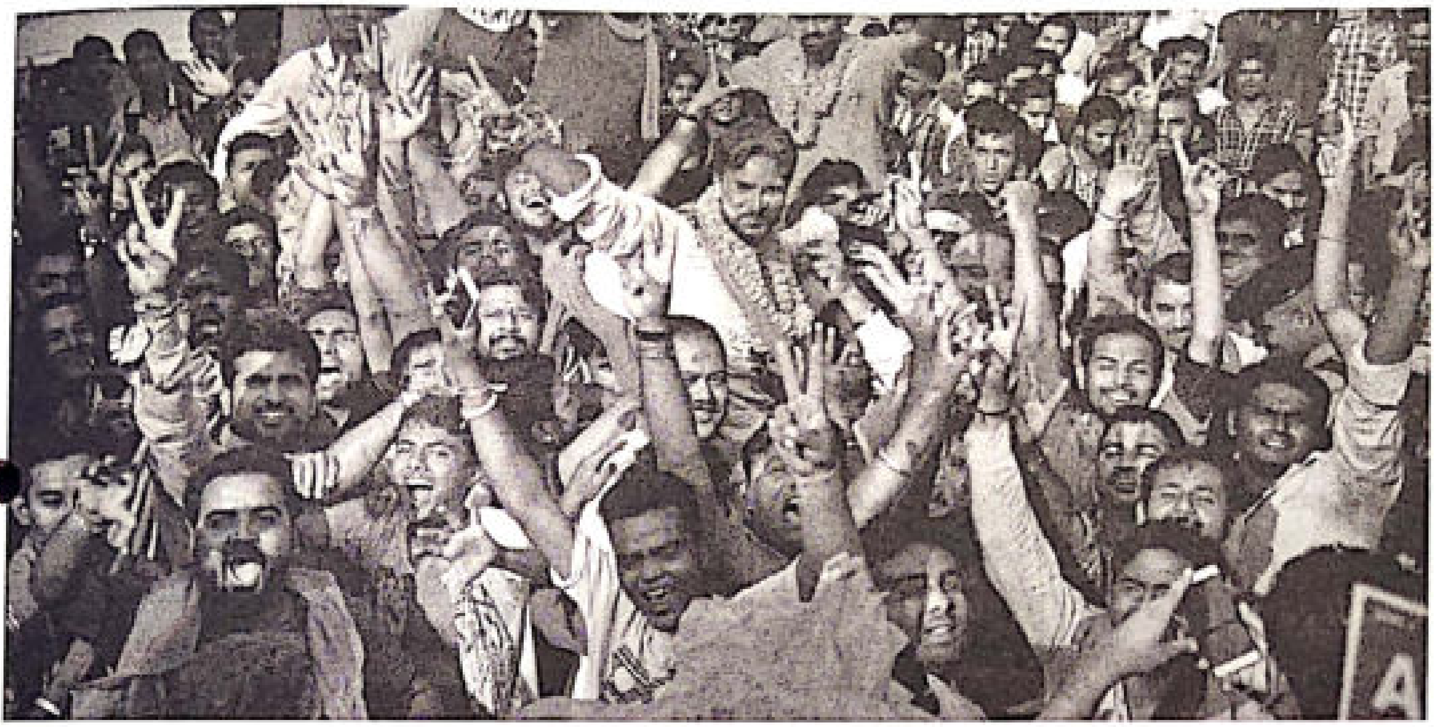

राजधानी देहरादून समेत प्रदेश के कई महाविद्यालयों के छात्र संघ चुनाव का नतीजा अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के पक्ष में रहा। लगभग सभी कॉलेज़ों में अभाविप की धमक देखने को मिली। कहीं अध्यक्ष पद पर परिषद् के उम्मीदवार जीते तो कहीं पर सभी पद अभाविप पदाधिकारियों का कब्जा रहा।

इस क्रम में राजधानी देहरादून के प्रतिष्ठित एम.के.पी कॉलेज़ में छात्र संघ चुनावों का नतीजा अभाविप के पक्ष में रहा। सभी पदों पर अभाविप के प्रत्याशियों ने बाजी मारी। एम.के.पी छात्र संघ चुनाव में क्लीन स्वीप करनेवाली अभाविप के अध्यक्ष-पद के प्रत्याशी साक्षी शंकर ने करीब दो सौ मतों से अपने प्रतिद्वंद्वी को परास्त किया। जबकि उपाध्यक्ष पद पर मीनाक्षी, महासचिव पद पर आरती भण्डारी और कोषाध्यक्ष पद के लिए वृद्धि विजय ने जीत दर्ज़ की।

वहीं, लक्सर के राजकीय महाविद्यालय के छात्र संघ-चुनाव में एक बार फिर अभाविप ने अपना दबदबा कायम रखा। महाविद्यालय में अभी तक हुए 15 छात्र संघ चुनावों में 14 बार छात्र संघ-अध्यक्ष के पद पर अभाविप ने कब्ज़ा जमाया है। राज्य गठन के बाद वर्ष 2000 में लक्सर में राजकीय महाविद्यालय की स्थापना के बाद से ही कॉलेज़ के छात्रसंघ-चुनाव में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का दबदबा रहा है। हर बार चुनाव में छात्रसंघ अध्यक्ष समेत अन्य पदों पर अभाविप-समर्थित प्रत्याशियों ने जीत दर्ज़ की। अभाविप के पूर्व जिला सह संयोजक तथा छात्र संघ अध्यक्ष रह चुके अश्विनी चौधरी के अनुसार, अभाविप की ओर से पिछले डेढ़ दशक से महाविद्यालय तथा यहाँ के छात्र-छात्राओं की समस्याओं को लेकर संघर्षरत है। संगठन की सक्रियता व छात्र-हितों में संघर्ष को देखते हुए ही छात्र-छात्राएँ संगठन से जुड़ते हैं।

इसके अलावा, डोईवाला के शहीद दुगामल्ल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के छात्रसंघ चुनाव में भी अध्यक्ष पद पर विद्यार्थी परिषद् का दमखम दिखा। परिषद् के लोकेश राणा ने एन.एस.यू.आई के विवेक सैनी को 60 मतों से हराया। जबकि महासचिव पद पर आर्यन ग्रुप के दीपक सिल्सवाल ने एन.एस.यू.आई के हरजीत सिंह को 294 मतों से हराकर शानदार जीत दर्ज़ की।

दोषियों पर कार्रवाई को लेकर अभाविप प्रतिबद्ध

जाँच-प्रक्रिया में तेजी लाने की मांग को लेकर राजनाथ सिंह से मिला प्रतिनिधिमंडल

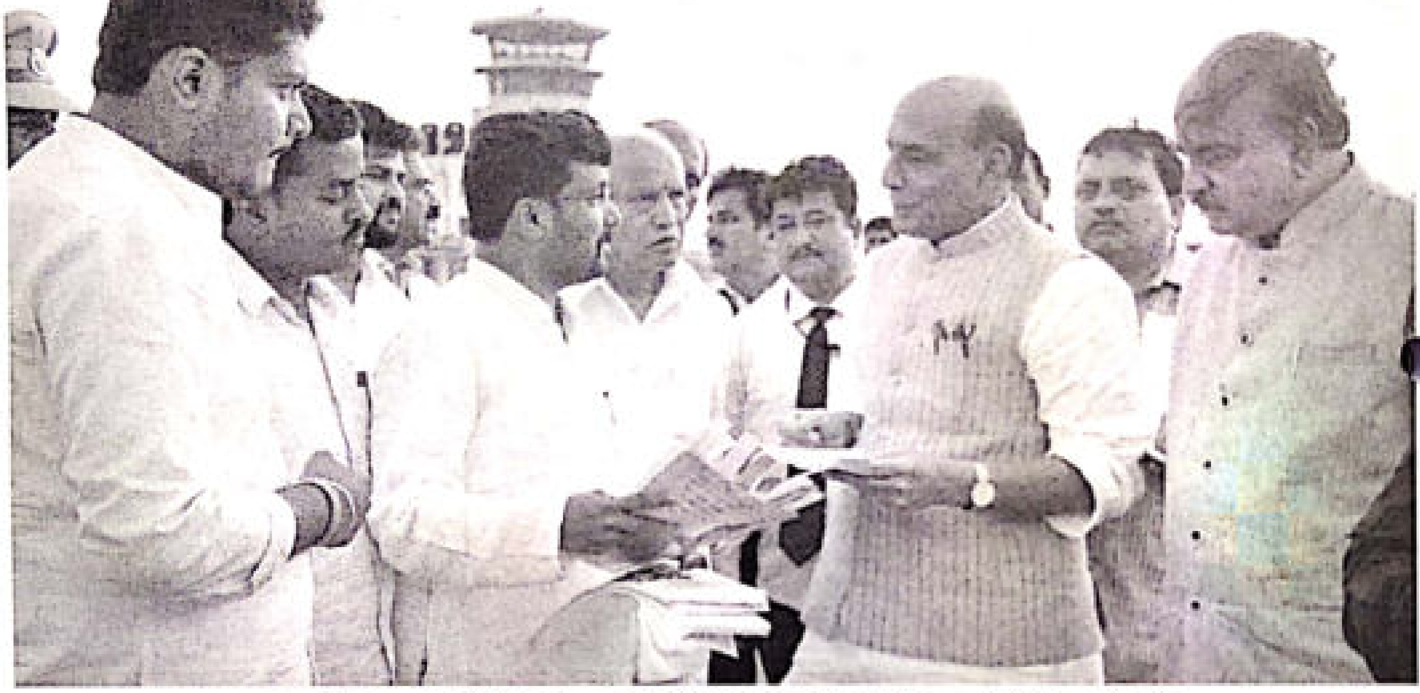

गृहमंत्री राजनाथ सिंह को ज्ञापन सौंपते अभाविप के राष्ट्रीय महामंत्री विनय बिदरे

एमनेस्टी इंटरनेशनल के एक सेमिनार में देशविरोधी नारेबाजी के मामले में अब भी कई पेंच सामने आ रहे हैं। एक तरफ तो अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (अभाविप) दोषियों पर कार्रवाई किए की अपनी मांग पर अड़ा है, तो वहीं कर्नाटक पुलिस यह पुष्टि करने में लगी है कि इस पूरे घटनाक्रम में मानवाधिकार संगठन एमनेस्टी इंटरनेशनल पर देशद्रोह का मामला नहीं बनता।

इस बीच, अभाविप के प्रतिनिधि-मण्डल ने राष्ट्रीय महामंत्री विनय बिदरे के नेतृत्व में केंद्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह से भी मुलाकात की और मामले की जांच में तेजी लाए जाने तथा दोषियों पर सख़्त कार्रवाई किए जाने की मांग की। विनय बिदरे ने कहा कि एमनेस्टी के ख़िलाफ देशद्रोह के मामले के अलावा अलग-अलग सेक्शन में भी कई मुक़दमे दर्ज़ हुए हैं, उसके आधार पर भी कार्रवाई होनी चाहिए।

गृहमंत्री से मुलाकात के दौरान अभाविप ने विभिन्न मांगों को लेकर अपना ज्ञापन भी सौंपा जिसमें मुख्यतः देशविरोधी नारेबाजी करनेवाले लोगों को अविलंब गिरफ़्तार किए जाने की बात निहित है। सबूत के तौर पर अभाविप ने कुछ वीडियो भी सौंपे हैं। साथ ही, एमनेस्टी द्वारा इस पूरे मामले में माफ़ी नहीं मांगी गई है, बल्कि वह देशविरोधी नारे लगानेवालों के समर्थन में खड़ा है। ऐसे में इस पर कार्रवाई होनी चाहिए। वहीं, यूनाइटेड टियोलॉजिकल कॉलेज़ पर भी मामला दर्ज़ होना चाहिए जहाँ पर एमनेस्टी इंटरनेशनल का कार्यक्रम हुआ। अभाविप ने अपनी मांगों संबंधी ज्ञापन को कर्नाटक के राज्यपाल बंगलुरू पुलिस आयुक्त को भी सौंपा है।

मुलाकात के पश्चात् विनय बिदरे ने कहा कि सरकार और प्रशासन अपना काम करेगा, लेकिन विद्यार्थी परिषद् चुप नहीं बैठेगी। देशविरोधी तत्त्वों के ख़िलाफ अभाविप देशभर में जनजागरण अभियान चलायेगी। उन्होंने कहा कि दोषियों के ख़िलाफ काफ़ी सबूत इकट्ठा किया गया है तथा और भी सबूत जुटाने का काम चल रहा है। ऐसे में क़ानूनी तौर पर भी परिषद् एमनेस्टी इंटरनेशनल को घेरने मे जुटी है।

आज अधिक प्रासंगिक हैं दीनदयाल उपाध्याय

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

दीनदयाल उपाध्याय जितने प्रासंगिक 50 साल पूर्व थे, उससे अधिक प्रासंगिक आज हैं। वे भविष्यद्रष्टा थे, आनेवाली पीढ़ियों को ध्यान में रखकर कार्य कर रहे थे।

जब अंग्रेज़ भारत छोड़कर जा रहे थे, तब का राजनीतिक दृश्य हम ध्यान में लाएँ। राजनीति में कॉंग्रेस का वर्चस्व था, लेकिन अंग्रेज़ अपने पीछे एक 'तज्ञ राष्ट्र' के रूप में भारत को छोड़ना चाहते थे, इसलिए संवैधानिक विकास के नाम पर कॉंग्रेस को अपने उत्तराधिकारी के रूप में विकसित कर रहे थे।

महात्मा गाँधी कॉंग्रेस में कमज़ोर होते जा रहे थे। 1939 में गाँधीवादियों के प्रत्याशी पट्टाभि सीतारमैया नेताजी सुभाष चंद्र बोस के सामने चुनाव हार गये। अंग्रेज़ों को भारत को तज्ञ राष्ट्र के साथ-साथ कमजोर राष्ट्र भी बनाना था, अतः उन्होंने योजनाबद्ध तरीके से द्वि-राष्ट्रवादी मुस्लिम लीग का भी विकास किया। ये दोनों लक्ष्य उन्होंने प्राप्त भी किए।

तज्ञ राष्ट्र ने आज़ाद भारत का प्रथम गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्टबेटन को बनाया तथा ब्रिटिश संसद द्वारा पारित अधिनियम के अधिष्ठान पर सत्ता का हस्तांतरण किया, जो संवैधानिक विकास की प्रक्रिया अंग्रेज़ ने प्रारंभ की थी, उसको जारी रखा। मुस्लिम लीग ने 1940 में पाकिस्तान की स्थापना का प्रस्ताव रखा तथा बंगाल में सीधी कार्रवाई की, अंग्रेज़ ने बँटवारे का प्रस्ताव रखा, कॉंग्रेस ने उसे भी स्वीकार कर लिया। महात्मा गाँधी ये दोनों ही बातें नहीं चाहते थे। उन्होंने प्रथम 15 अगस्त के उत्सव का बहिष्कार किया। उन्होंने पीड़ा के साथ कहा, 'आज मेरी कोई नहीं सुनता है।'

वह 1939 का ही वर्ष था जब युवा दीनदयाल ने अपनी स्नातकीय पढ़ाई कानपुर के सनातन धर्म कॉलेज़ से पूर्ण की थी। राष्ट्रीय घटनाचक्र के वे तीक्ष्ण अध्येता थे। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये संघ के स्वयंसेवक तथा बाद में जीवनव्रती प्रचारक बन गये। अंग्रेज़ ने भारत को तज्ञ राष्ट्र बनाने के लिए तथा भारत को विभक्त करने की जो रणनीति रची थी, रा.स्व. संघ उसके खिलाफ था।

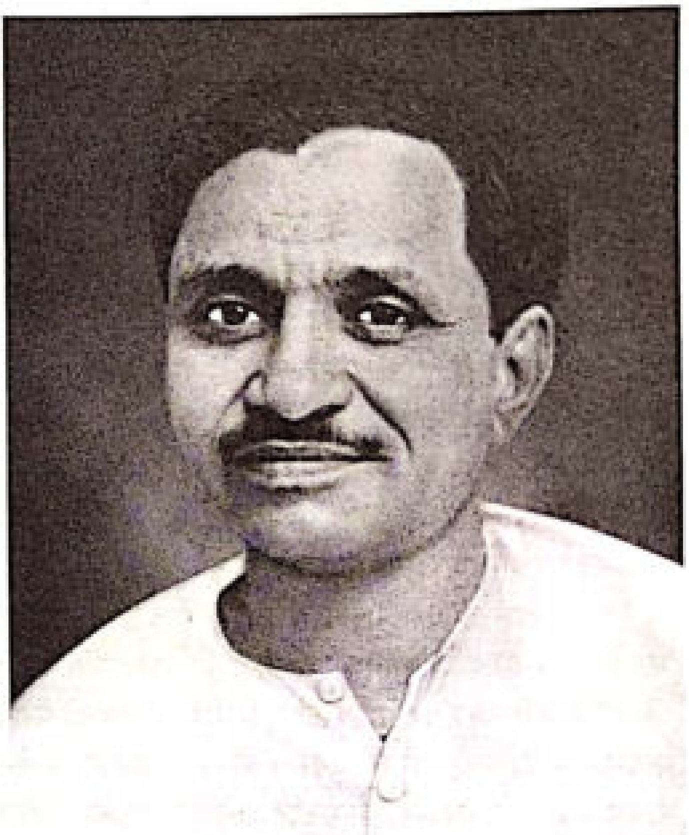

दीनदयाल जी संघ के उत्तरप्रदेश सह प्रांत प्रचारक बने। अंग्रेज़ों की इन दोनों योजनाओं को विफल करने के लिए जिस प्रकार की क्षात्रतेज संपन्न सांस्कृतिक धारा की आवश्यकता थी, उसके लिए उन्होंने दो महापुरुषों को चुना। सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य एवं जगद्गुरु शंकराचार्य के जीवन पर उन्होंने दो उपन्यास लिखे। संवैधानिक प्रक्रिया एवं द्वि-राष्ट्रवाद के ख़िलाफ आवाज़ बुलंद करनेवाले साहित्य का निर्माण किया। 'पांचजन्य' साप्ताहिक, 'राष्ट्रधर्म' मासिक एवं दैनिक 'स्वदेश' का प्रकाशन प्रारंभ किया।

अंग्रेज़ों की उत्तराधिकारी बनने को आतुर कॉंग्रेस इससे तिलमिला गयी। द्वि-राष्ट्रवाद के ख़िलाफ संगठित राष्ट्रीय शक्ति को उसने सांप्रदायिकता करार दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा पोषित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को पाश्चात्य फासिज्म की संज्ञा दी। अंग्रेज़ों के जाने तथा भारत-विभाजन होने की अनेक प्रतिक्रियाएँ भारत में हो रही थी। तभी एक 'पागल' कार्यवाही हुई, महात्मा गाँधी की हत्या कर दी गयी। कॉंग्रेस ने इस घटना का दुरुपयोग करते हुए रा.स्व. संघ पर प्रतिबंध लगा दिया। प्रचण्ड सत्याग्रह हुआ, कॉंग्रेस का झूठ उजागर हुआ, रा.स्व. संघ से प्रतिबंध हटा एवं नवीन राजनीतिक दल भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। दीनदयाल उपाध्याय इस नवीन दल के महामंत्री चुने गए। 1951 में दीनदयाल जी महामंत्री चुने गए, 1952 में ही प्रथम चुनाव हुआ। आज़ादी के आंदोलन के आभामण्डल के साथ कॉंग्रेस सत्तासीन हुई। भारत के संसद में विपक्ष कौन था? वामपंथी-साम्यवादी व समाजवादी। कॉंग्रेस ने तो द्वि-राष्ट्रवाद के आधार पर भारत का विभाजन स्वीकार किया था। वामपंथी तो उनसे भी ज़्यादा ख़तरनाक यानी बहुराष्ट्रवादी थे। वे भारत का और विभाजन चाहते थे, संघातमकता का सहारा लेकर उन्होंने इसका प्रयत्न भी किया, भाषावार राज्य-रचना के लिए जो देश में हिंसक आंदोलन हुए, उसके पीछे वामपंथी ही थे।

पक्ष-विपक्ष की ऐसी राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय एवं भारतीय जनसंघ को भारतमाता की जयाकांक्षी राजनीति बुननी थी। सौभाग्य से तब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी थे, वे तब की संसद के प्रखरतम राष्ट्रवादी स्वर थे। जनसंघ को हालांकि संसद में तीन ही स्थान प्राप्त थे, लेकिन अनेक छोटे दलों को जोड़कर उन्होंने एक 'लोकतांत्रिक गठबंधन' बनाया, जिसमें 38 सांसद हो गए थे। यह सौभाग्य लंबा नहीं चला। 1953 में ही डॉ. मुखर्जी काश्मीर को भारत में विलयित करने के युद्ध में शहीद हो गए। नौजवान दीनदयाल ही अब इस नवीन दल के खेवनहार थे। भारत की संसद में ग़ैर-कॉंग्रेसी तथा ग़ैर-वाम राष्ट्रवादी विपक्ष का ताना-बाना बुनना था। दीनदयाल उपाध्याय ने इस चुनौती का सामना किया। भारत के लोकतंत्र को अपेक्षित, विपक्ष के स्तम्भ को उन्होंने गढ़ा।

सन् 57, 62, व 67 के आम चुनावों जनसंघ राजनीतिक व वैचारिक रूप से आगे बढ़ता रहा, 1967 के चुनावों के बाद भारतीय जनसंघ, कॉंग्रेस के बाद सबसे बड़े दल के रूप में उभरकर सामने आया। सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट– सभी पीछे रह

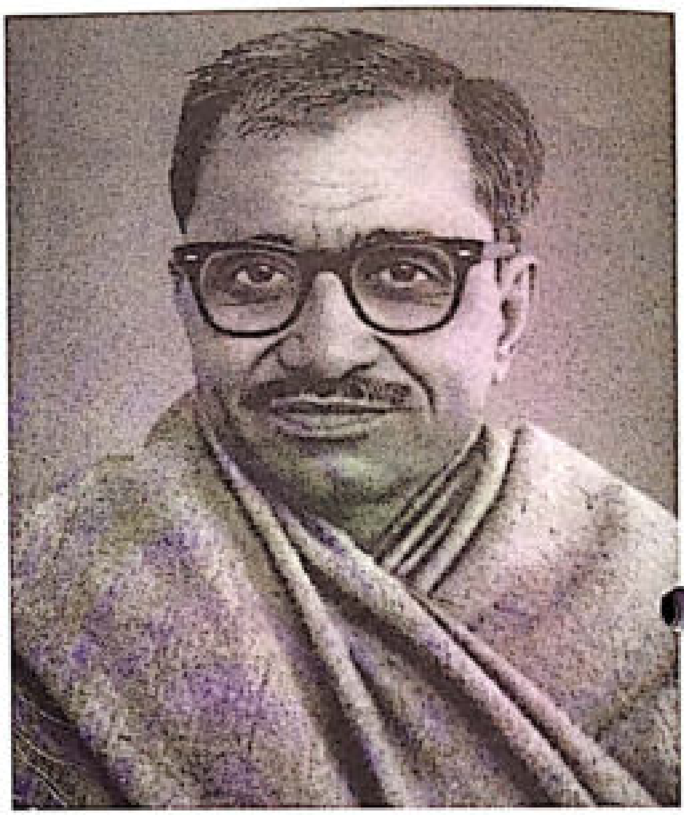

गये। इसी राष्ट्रवादी विपक्ष को भारत की राजनीति का सकारात्मक विकल्प बनाना था, उसका ताना-बाना भी उन्होंने बुन लिया था, लेकिन नियति प्रतिकूल थी। 1968 के प्रारंभ में ही निर्मम हत्या ने उन्हें हमसे छीन लिया।

सकारात्मक विकास की रूपरेखा उन्होंने 1964-65 में 'एकात्म मानववाद' के रूप में प्रस्तुत की थी। भारत के लोकतंत्र, शिक्षा व अर्थनीति के भारतीयकरण का आह्वान किया था। जनपदों तक विकेंद्रित एकात्म शासन की संकल्पना प्रस्तुत की थी। भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अधिष्ठान पर राष्ट्र एवं विश्व की एकात्मता की अवधारणा प्रस्तुत की थी। पाश्चात्य ढाँचे का क्रमशः विगलन एवं भारतीयतापरक आधुनिक व्यवस्था के रूपायन की राजनीति वे बुन रहे थे। भविष्य की पीढ़ियों को यह काम देकर वे चले गये। भारत की जनता ने राष्ट्रवाद के स्वर के रूप में भाजपा को सत्ता सौंपी है। राजनीतिक सत्ता से बड़ी है सामाजिक सत्ता, 'लोकमत परिष्कार' के माध्यम से सामाजिक सत्ता को राष्ट्रजीवन में अधिष्ठित करना है, राजनीतिक सत्ता इसमें सहयोगी होगी, मगर निर्णायक नहीं। सत्तोन्मुखी राजनीति को समाजोन्मुखी बनाना होगा। दीनदयालजी ने कहा था, "मैं राजनीति में संस्कृति का राजदूत हूँ।" इसके मर्म को समझते हुए वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को अपना कर्तव्य सुनिश्चित करना होगा।

छत्तीसगढ़ के विश्वविद्यालय बने विद्यार्थी परिषद् के गढ़

प्रदेश के 9 विश्वविद्यालयों में 7 पर अभाविप का कब्जा

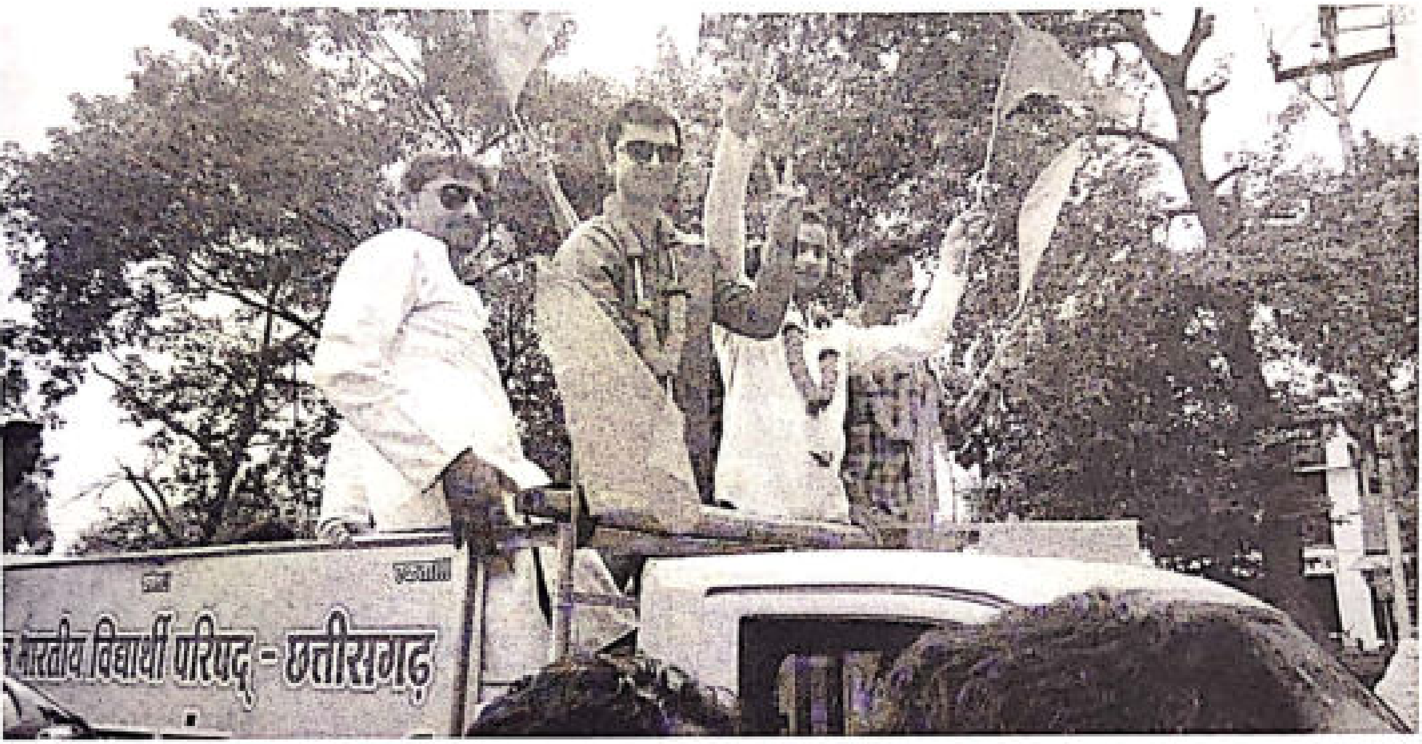

छात्र हित के मुद्दे को लेकर वर्षभर छात्रों के बीच रहने वाले छात्र संगठन अभाविप को इसका फल मिल गया है। एक बार फिर विद्यार्थी परिषद् विश्वविद्यालयों में युवाओं की पसंद बना है। छत्तीसगढ़ के नौ विश्वविद्यालयों में हुए हुए छात्र संघ चुनावों में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् ने सात में जीत हासिल की है।

छात्र संघ चुनाव में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (अभाविप) व भारतीय राष्ट्रीय छात्र संगठन (एनएसयूआई) के बीच मुख्य मुकाबला रहा। जिसमें अभाविप ने रायपुर के प्रतिष्ठित पं. रविशंकर शुक्ला विवि सहित प्रदेश के सात विश्वविद्यालयों में अपना परचम लहराया। वहीं कुशाभाऊठाकरे पत्रकारिता विश्वविद्यालय एवं स्वामी विवेकानंद तकनीकी विश्वविद्यालय में एनएसयूआई को सफलता मिली। जोगी कांग्रेस के प्रत्याशी भी कुछ कलेजों में एक-दो की संख्या में जीत हासिल की।

प्रदेश में सबसे बड़े एवं प्रतिष्ठित माने जाने वाले पं. रविशंकर शुक्ल विवि में अभाविप के उम्मीदवार वैभवसिंह ठाकुर ने एनएसयूआई प्रत्याशी को करारी शिकस्त देते हुए यह सीट अभाविप के खाते में डाली। पिछले चुनाव में भी यह सीट अभाविप के पास थी। इसके अतिरिक्त प्रदेश के दूसरे विवि सरगुजा बस्तर एवं बिलासपुर में भी परिषद् ने जीत का परचम फहराया। राजधानी के अन्य विश्वविद्यालय आयुष एवं इंदिरागांधी षि विवि में भी अभाविप के सौरभ कुमार प्रभात और निधि वर्मा अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हुए। जबकि कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता विवि में एनएसयूआई के रोहित वर्मन ने अभाविप उम्मीदवार को पटखनी दी।

प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों में मिली जीत के बाद अभाविप कार्यकर्ताओं में गजब का उत्साह देखने को मिला। विश्वविद्यालयों में अभाविप सदस्यों की जीत का जश्न मनाते हुए कार्यकर्ताओं ने जमकर आतिशबाजी की। विवि परिसर में कार्यकर्ताओं ने ढोल नगाड़े के साथ विजयी उम्मीदवारों को फूलमालाओं से स्वागत किया। वहीं प्रदेश के मात्र दो विवि में कामयाबी मिलने से एनएसयूआई खेमें में निराशा रही।

दीनदयाल उपाध्याय

उन्होंने राजनीति को नयी दिशा दी

पद्मश्री डॉ. जवाहरलाल कौल

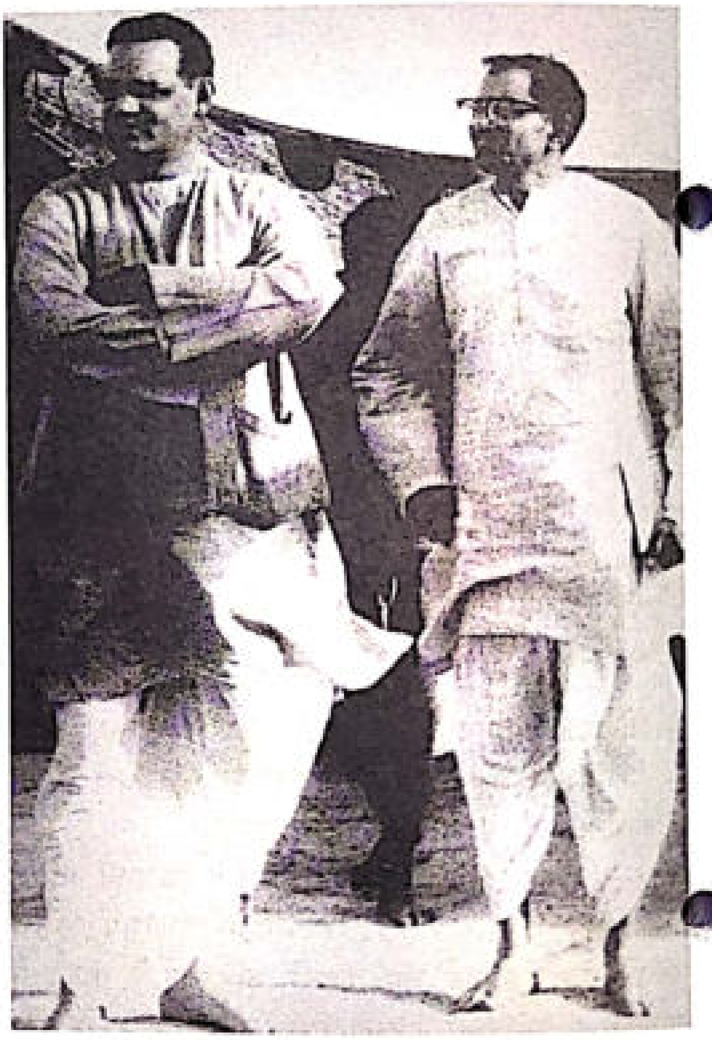

पं. दीनदयाल उपाध्याय देश के संक्रमण-काल में एक सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में आए, जब एक युग जा रहा था और एक की आहट सुनाई दे रही थी। कुछ मान्यताएँ, कुछ मिथक टूटने लगे थे, लेकिन नयी मान्यताएँ और परम्पराएँ अभी काल के गर्भ में ही थीं। युगों के ऐसे ही संधिकाल में कुछ मार्गदर्शक, कुछ चिन्तक और कुछ योद्धा पैदा होते हैं जो उन देशों का इतिहास बनाते हैं। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि वे औरों से भिन्न थे। पचास के दशक के आरंभिक वर्षों में ही उनकी प्रतिभा को पहचाना गया था, तब वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही प्रचारक थे। स्वयं उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी कि वे सक्रिय राजनीति में जाएँगे। राजनीति का स्वरूप वे देख चुके थे और जिन राष्ट्रीय राजनैतिक नेताओं से राष्ट्र को बहुत उम्मीदें थी, उनके कारण ही मोह भंग की स्थिति को भी वे देख रहे थे। दीनदयाल जी-जैसे सौम्य और नैतिक मूल्योंवाले युवक के लिए राजनीति कोई आकर्षण का कार्यक्षेत्र नहीं हो सकता था। लेकिन नियति हर व्यक्ति की भूमिका पहले से तय कर चुकी होती है। उनकी भी तय हो गई थी। उन्हें इस ह्रास और मोहभंग की अवस्था में निराशा के वातावरण को बदलने की छटपटाहट को सही गति देने लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभानी थी।

भारत अब पराधीन नहीं था और अब जो निराशा हो रही थी, वह अंग्रेज़ी शासकों के कारण नहीं, स्वाधीन भारत के उन नेताओं के कारण हो रही थी जिन पर देश को नयी दिशा और नयी स्फूर्ति देने का दायित्त्व था। यह मोहभंग अपनों के कारण हो रहा था। बीसवीं शताब्दी के पचास साल गुजरने से पहले ही देश जान गया था कि जिस आर्थिक प्रगति, सांस्कृतिक नवोदय और शैक्षणिक प्रौढ़ता की आशा जगाई गई थी, वह पहले से भी दूर हो गई है। काँग्रेस पर 1947 के तुरंत पश्चात् ही व्यक्तिगत आकांक्षाओं और स्वार्थवाले तत्त्वों का अधिकार हो गया था और इन्हीं तत्त्वों के कारण देश कई विकट समस्याओं से घिर गया था। चाहे काश्मीर की समस्या हो या तिब्बत की, कृषि की बिगड़ती हालत हो या औद्योगिक क्षेत्र में लगभग ठहराव, विश्व-बिरादरी में मित्रहीन की स्थिति हो या केंद्र सरकार में बढ़ती निरंकुशता– इन विसंगतियों से देश के बहुत-से नेता चिन्तित थे। सरकार में रहकर भी निराशा डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, डॉ. राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण और अन्य अपने-

अपने दृष्टिकोणों से उन विसंगतियों के मूल में जाकर रोग के मूलाधार को जानने की कोशिश कर रह थे। इन्हीं वरिष्ठ नेताओं के बीच कुछ ऐसे भी कार्यकर्ता थे जो राजनीति में न होते हुए भी चिन्तित थे और इस नतीज़े पर पहुँचे थे कि इस निराशा का कारण राजनीति में नैतिक मूल्यों का अभाव और अर्थनीति में स्वालम्बन और देशज ज्ञान और तकनीक की अवहेलना ही है। उनको एहसास था कि कॉंग्रेस ने गाँधी जी और उनके सिद्धांतों को तिलांजलि दे दी है। इन चिन्तकों में युवा दीनदयाल उपाध्याय भी थे। स्वाभाविक था कि भारतीय जनसंघ की स्थापना के बाद उन्हें राजनीति में जाने की प्रेरणा दी गयी। वे राजनीति में इसलिए नहीं गए कि राजनीति उनके लिए व्यवसाय थी या यह उनका स्वभाव था और न इसलिए कि सत्ता का आकर्षण था। वे इसलिए गए कि तात्कालिक स्थितियों में अपने विचारों को आजमाने का राजनीति एक साधनमात्र दिखाई देती थी।

जनसंघ-नेता के रूप में उनके सामने दो बड़ी समस्याएँ आ गईं थीं। एक थी काश्मीर की समस्या जिसे कॉंग्रेस सरकार ने इतना उलझा दिया था कि भारत के लिए वह एक दीर्घकालीन संकट बनने का संकेत दे रही थी। जनसंघ ने तभी इस ख़तरे को महसूस किया था और इसकी चेतावनी सरकार को दी थी। श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने तो नेहरू को कई पत्र लिखे थे कि उनकी शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की वक़ालत करना देश के लिए ख़तरा पैदा करेगी। ये चेतावनियाँ बाद में सही साबित हुईं। जम्मू में प्रजा परिषद् ने शेख के अलगावाद के ख़िलाफ आंदोलन चलाया था। उन दिनों जम्मू काश्मीर जाने के लिए किसी भारतीय को परमिट लेकर जाना पडता था। डॉ. श्यामा प्रसाद जी ने इस असंवैधानिक और अराष्ट्रीय कदम के विरुद्ध इस क़ानून को तोड़कर राज्य में प्रवेश करने का फ़ैसला किया। राज्य की सीमा पर लखनपुर में उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। डॉ. मुखर्जी के जेल में रहते हुए दीनदयालजी के लिए प्रजा परिषद् के आंदोलन को पूरा सहयोग देने की ज़िम्मवारी थी जिसे उन्होंने पूरी लगन के साथ निभाया। श्यामा प्रसाद मुखर्जी शेख अब्दुल्ला की जेल में ही चल बसे। यह बलिदान जनसंघ के लिए बहत बड़ा आघात तो था ही, व्यक्तिगत तौर पर दीनदयाल जी के लिए भी आकस्मिक धका था। दीनदयालजी और श्यामा प्रसाद के बीच वैचारिक और कार्यशैली के स्तर पर एक ऐसी सहमति बन गई थी कि मुखर्जी मानते थे कि यदि एक और दीनदयाल मिल जाएँ तो देश का चेहरा ही बदला जाएगा। दूसरी चुनौती तब सामने आई जब कॉंग्रेस अपने भीतरी विरोधाभासों एवं स्वार्थी राजनीति के कारण बिखरने लगी। कॉंग्रेस के भीतर भी विद्रोह होने लगे और बाहर से भी। दीनदयालजी की दृष्टि में यह बहुत बड़ी चुनौती थी क्योंकि कॉंग्रेस के बिखराव के बावजूद देश में कोई विकल्प नहीं था जो इसका स्थान ले और देश को सही दिशा दे सके। लोहिया जी के आसपास समाजवादियों के कई गुट थे तो जयप्रकाश जी भी समाजवाद से गाँधीवाद तक की अपनी यात्रा में कोई वैकल्पिक विचारधारा पेश नहीं कर पाए थे। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व भारतीय जनसंघ तो करता था, लेकिन समकालीन राजनीति और अर्थव्यवस्था की व्याख्या करने के लिए एक ऐसी विचारधारा की आवश्यकता थी जो किसी गहन चिन्तन पर आधारित हो और मात्र राजनैतिक दस्तावेज के बदले एक दार्शनिक और सैद्धान्तिक व्याख्या हो। दीनदयाल जी आरम्भ से ही एक मननशील व्यक्ति थे और भारतीय दर्शन और ज्ञान के व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करते ही रहे थे। वे मानते थे कि कोई सार्वजनिक सिद्धान्त या दूरगामी नीति बिना नैतिक आधार के दूरगामी नहीं हो सकती। जो भारतीय विचार विश्व को एक

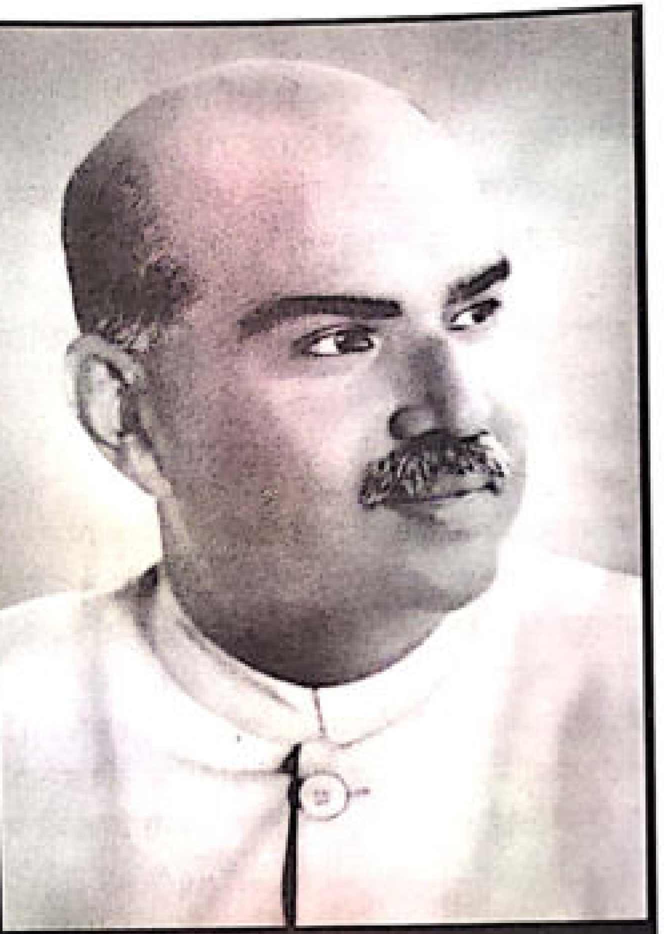

डॉ. मुखर्जी के जेल में रहते हुए दीनदयालजी के लिए प्रजा परिषद् के आंदोलन को पूरा सहयोग देने की ज़िम्मेवारी थी जिसे उन्होंने पूरी लगन के साथ निभाया। श्यामा प्रसाद मुखर्जी शेख अब्दुल्ला की जेल में ही चल बसे। यह बलिदान जनसंघ के लिए बहत बड़ा आघात तो था ही, व्यक्तिगत तौर पर दीनदयाल जी के लिए भी आकस्मिक धक्का था। दीनदयालजी और श्यामा प्रसाद के बीच वैचारिक और कार्यशैली के स्तर पर एक ऐसी सहमति बन गई थी कि मुखर्जी मानते थे कि यदि एक और दीनदयाल मिल जाएँ तो देश का चेहरा ही बदला जाएगा।

परिवार मानता हो, वह कोई संकुचित वाद नही हो सकता, उसके लिए ऐसा ही दृष्टिकोण उचित होगा जो सार्वभौमिक हो, जो मानवीय हो। मनुष्य की मूलभूत एकता के आधार पर उन्होंने **एकात्म मानववाद** का प्रस्ताव किया। एकात्म मानववाद गाँधीवाद का विकल्प नहीं है और न लोकतान्त्रिक व्यवस्था का विरोध है। यह दोनों की मौलिक एकता का ही सिद्धांत है; क्योंकि दीनदयाल जी मानते थे कि इन सभी वादों में समानताएँ बहुत हैं, विरोधाभास कम। यदि तार्किक व्याख्या की जाए, तो एक समग्र सामाजिक दर्शन विकसित हो सकता है। इस मायने में दीनदयाल जी एकता और एकात्मता के समर्थक थे।

लेकिन किसी सार्वदेशिक विचारधारा के लिए पहले आवश्यकता यह थी कि देश के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करनेवाले दलों में सहमति हो। जनसंघ का उस समय इतना विकास नहीं हुआ था कि वह कांग्रेस का विकल्प बन सकता। लोहिया जी इस समस्या को वैचारिक रूप से भिन्न दृष्टिकोण से देखते थे और छोटे क्षेत्रीय दलों की अपनी सीमित आकांक्षाएँ और सीमित लक्ष्य थे। इन सबमें एकता कैसे लाई जा सकती है। दीनदयाल जी ने उस समय, साठ के दशक में विभिन्न दलों में एकता लाने का जो प्रयास किया, उसमें लोहिया जी और उनके अनुयायी एवं हिंदी-राज्यों के क्षेत्रीय दल, जिनमें से कुछ तो कांग्रेस से ही टूटकर बने थे, एक मंच पर आने को तैयार हो गये। देश में संविद सरकारों का युग आरम्भ करने में दीनदयाल जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संविद सरकारें अधिक समय तक भले ही न टिक पाई हों, लेकिन उस समय से पहले ग़ैर-कांग्रेसी राजनैतिक दलों के बीच काफ़ी दूरी हुआ करती थी। समाजवादी और राष्ट्रवादी एक दूसरे को दुश्मनों की तरह देखा करते थे। दीनदयाल जी के ही प्रयासों से यह दूरी कम हुई और दोनों वर्गों में बातचीत या बहस की संभावनाएँ पैदा हो गयीं। आगे चलकर इसी प्रवृत्ति ने 1977 में ग़ैर-कांग्रेसी दलों के बीच ऐसी सहमति पैदा कर दी जिसने केंद्रीय स्तर पर भी ग़ैर-कांग्रेसवाद का विकास किया। कांग्रेस के एकाधिकार को तोड़ने की प्रक्रिया आरम्भ की। यदि दीनदयाल जी की निर्मम हत्या नहीं होती तो जिस स्वदेशी आन्दोलन की आज हम कामना करते हैं, वह सार्थक हो गया होता। जिस रहस्यमय ढंग से उनकी हत्या की गई, उसमें एक निहित योजना दिखाई देती है, जिसका उद्देश्य केवल आपराधिक ही नहीं, राजनीतिक भी हो सकता है। ■

परिचर्चा

क्या है 'नोटा' का औचित्य ?

लोकतांत्रिक प्रक्रिया में मतदाताओं को ताकत देने की मंशा से वर्ष 2013 में बना नोटा (नन ऑफ द एबव) प्रावधान आज भी अपने औचित्य और उपयोगिता की तलाश में भटक रहा है। इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन पर लगी नापसंदगी के बटन के जरिए उम्मीदवारों को नकारने के इस विकल्प का प्रयोग छात्र संघ चुनाव में भी शुरू किया गया है। विश्वविद्यालय-स्तर पर पहली बार नोटा के प्रयोग को छात्रों ने हाथों-हाथ लिया, जो दर्शाता है कि छात्रों में असंतोष की भावना कितनी प्रबल है। लेकिन इससे हो क्या जाएगा। क्या छात्र नेता अपनी आदतों में इतना सुधार कर लेंगे, जिसके चलते ईवीएम में इस बटन को लगाने की जरूरत पड़ी। क्योंकि अगर नापसंदगी का प्रतिशत, प्रत्याशियों के हार-जीत के अन्तर से ज्यादा हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उम्मीदवार तो कम मत प्रतिशत पर भी जीत ही जाते हैं। चाहे उसको मिले वोटों की मात्रा जो भी हो। ऐसे में नोटा के औचित्य पर सवाल उठना लाज़मी है कि आखिर इस प्रयोग की क्या ज़रूरत जो नकारात्मक परिणाम को जन्म दे।

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव में नोटा का जमकर प्रयोग हुआ। डूसू के अध्यक्ष पद को छोड़ दिया जाए तो शेष तीनों पदों पर हार-जीत के अंतर से अधिक नोटा के वोट पड़े। अध्यक्ष पद पर जहाँ 3,221 मत नोटा के खाते में गये, वहीं उपाध्यक्ष, सचिव और संयुक्त-सचिव पद पर क्रमशः 3924, 5616 और 4951 मत नोटा के अंतर्गत पड़े। इस तरह चारों पदों पर कुल 17,712 वोट नोटा को मिले। जबकि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र संघ चुनाव में सभी पदों के लिए औसतन 250 मत नोटा के लिए डले।

नोटा के प्रयोग और चयन-प्रक्रिया को नकारने के विकल्प के प्रति युवाओं में आकर्षण के विषय पर छात्रों की प्रतिक्रिया अलग-अलग है। छात्र-असंतोष की आवाज़ बने नोटा के विषय पर राष्ट्रीय छात्रशक्ति के लिए आकाश कुमार राव ने दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं से बातचीत की।

हम लोग कॉलेज़ में दाखिला पढ़ाई करने के लिए लेते हैं। ऐसे में राजनीति से सीधा सरोकार हमारा नहीं होता। लेकिन वर्षभर में छात्रों के समक्ष आनेवाली परेशानियों को देखते हुए जब छात्र संघ आगे आता है तो एक उम्मीद जगती है कि छात्र हित के लिए लोग हैं। ऐसे में यह कहना कि छात्रों के लिए नोटा बस एक विकल्प है या फिर वह इसके प्रयोग से अपना हित साधना चाहता है। बल्कि नोटा छात्र-नेताओं को उनकी ज़िम्मेदारियों की याद दिलाने का काम करेगा। विश्वविद्यालय स्तर पर इस प्रकार के प्रयोग सराहनीय हैं और वक्त के साथ छात्र संघों की स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो आँकड़े और भी बढ़ेंगे।

—सृष्टि पाण्डेय, ज़ाकिर हुसैन कॉलेज़, दिल्ली विश्वविद्यालय

भले ही नोटा छात्रों के लिए नया हो, लेकिन युवाओं को अपने अधिकारों की जानकारी है। वैसे भी सिर्फ़ चुनावी वायदों और खोखली बातों की राजनीति से छात्र उब चुके हैं। ऐसे में जब नोटा (कोई भी नहीं) का विकल्प इस बार दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव में सामने आया, तो छात्रों ने उसका उपयोग किया। नोटा यह दर्शाता भी है कि अगर छात्र नेता सिर्फ़ चुनाव के समय छात्र हित की बातों का नाटक करेंगे, तो उन्हें इसी प्रकार के परिणाम की आदत डालनी पड़ेगी।

—अनिल कटारा, किरोड़ीमल कॉलेज़, दिल्ली विश्वविद्यालय

नोटा का विकल्प होना ज़रूरी है, अगर नोटा नहीं होगा तो छात्रों पर प्रत्याशी थोप दिए जाएँगे। छात्र यह देखता है कि प्रत्याशी कुशल है कि नहीं। जिस तरह अध्यक्ष का काम नेतृत्व करने का होता है, सचिव का काम लिखा-पढ़ी का होता है, ऐसे में अगर प्रत्याशी अपने पद की ज़रूरत के मुताबिक नहीं होता तो छात्रों को उन्हें नकारने का अधिकार होना चाहिए, जो नोटा के रूप में उन्हें मिला है। वैसे भी छात्र संघ चुनाव में काबिलियत मायने रखती है विचारधारा नहीं।

—देश दीपक दुबे, रामलाल आनन्द कॉलेज़, दिल्ली विश्वविद्यालय

नोटा के विकल्प ने इस बार दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव के सारे समीकरण ही ध्वस्त कर दिये। जीत के अंतर से ज्यादा नोटा का होना इस बात की ओर इशारा करता है कि इस विकल्प की पुनर्समीक्षा होनी चाहिए। इतनी बड़ी संख्या में प्रत्याशियों को नकारा जाना छात्रों में व्याप्त असंतोष को दर्शाता है। नोटा का बटन मात्र विरोध का प्रतीक बनकर न रह जाए, इसलिए इस विकल्प का सही मसकद भी छात्रों को बताना होगा।

—हरपाल सिंह, हिंदू कॉलेज़, दिल्ली विश्वविद्यालय

इस बार के चुनाव में नोटा के माध्यम से हमलोगों ने विभिन्न छात्र-संगठनों को आगाह किया है कि यदि इसी प्रकार हेलिकॉप्टर कैंडीडेट उतारते रहे, तो आनेवाले कुछ वर्षों में छात्र उनके विकल्पों को पूरी तरह से नकार देंगे। चुनाव में उतारे गए महारथी पसंद न आए तो उसके लिए नोटा का विकल्प चुनना स्वस्थ लोकतन्त्र का प्रतीक है। इस बार हमलोगों ने छात्र संघ चुनाव में किसी भी प्रत्याशी को न चुनकर नोटा को चुना क्योंकि कोई भी प्रत्याशी न तो छात्रहितों के लिए कभी कैम्पस में सक्रिय रहा है और न ही कभी दिखाई दिया है। अचानक किसी भी व्यक्ति को चुनाव में खड़ा करना सीधे तौर पर प्रत्याशी को थोपा जाना है।

—नितिनेन्द्र प्रताप सिंह, देशबंधु कॉलेज़, दिल्ली विश्वविद्यालय

जब भी छात्रों को लगता है कि छात्र संघ के प्रत्याशी उनकी उम्मीदों के मुताबिक नहीं हैं या फिर इन प्रत्याशियों के आने से छात्र हित के कार्य नहीं हो सकेंगे, तब वे नोटा के विकल्प की ओर रुख करते हैं। जहाँ तक बात दिल्ली विश्वविद्यालय और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में काफ़ी संख्या में नोटा के बटन दबाए जाने की है, तो यह आँकड़े छात्र-असंतोष को दर्शाते हैं। छात्रों का यह असंतोष कोई नया नहीं है। हाँ, छात्रों द्वारा रोष दर्शाने का तरीक़ा ज़रूर नया है। अब तक छात्र मतदान के लिए परिसर में आते ही नहीं थे पर इस बार वे आये और उन्होंने किसी भी छात्र-संगठन के प्रत्याशियों के बजाय नोटा (कोई भी नहीं) को तरज़ीह दी। नोटा के प्रति छात्रों का इतना भरोसा दुःखद है, मगर नोटा के बाद कॉलेज़-परिसर की राजनीति में बदलाव के संकेत दिख रहे हैं।

—जाह्नवी ओझा, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नोटा को विकल्प के तौर पर देखना किसी भी लिहाज़ से सही नहीं ठहराया जा सकता। नोटा की उत्पत्ति तो खुद एक विकल्प है। मतदाताओं द्वारा 'राइट टू रिकॉल' की मांग पर बीच का रास्ता निकालते हुए नोटा को इज़ाद किया गया। वैसे भी अगर कोई पसन्द नहीं है तो यह वोट करने या न करने का मानक कैसे हो सकता है। हाँ, खूबियों और ख़ामियों की बात अलग है। मगर वहाँ भी दबाव बनाने या थोपने का तर्क सही नहीं। इन सबके बीच यह पचा पाना भी मुश्किल है कि किसी दल का पूरा पैनल ही नापसंद है। इस तरह की मानसिकता नोटा के जरिए 'आर्गेनाइज्ड क्राइम' को भी जन्म देगा जो लोकतंत्र के स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह होगा।

—मानवेंद्र चौहान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

गौरवशाली अतीत के आधार पर भव्य भविष्य गढ़नेवाले वर्तमान के शिल्पी

पं. दीनदयाल उपाध्याय

■ सुशील कुमार

पं. दीनदयाल उपाध्याय का जन्म अत्यन्त साधारण परिवार में 25 सितंबर, 1916 को हुआ था। पंडित जी मथुरा के एक छोटे-से गाँव नगला चंद्रभान के निवासी थे। शैशवावस्था से ही दीनदयाल जी को अनेक कष्टों से गुजरना पड़ा। अभी वे तीन वर्ष के ही थे कि इनके पिता भगवती प्रसाद का स्वर्गवास हो गया। अपनी माता रामप्यारी एवं छोटे भाई शिवदयाल के साथ इन्हें विवश होकर अपने मामा के यहाँ रहना पड़ा। विपत्तियाँ एक के बाद एक आती रहीं और सात साल की आयु में इनकी माँ का भी देहावसान हो गया। अपने छोटे भाई की देखरेख करते हुए उन्होंने यौवन की सीढ़ी पर पाँव रखा ही था कि 16 वर्ष की आयु में उनका अनुज भी काल का ग्रास बन गया।

छात्र-जीवन

यद्यपि दीनदयाल पर लगातार आपत्ति के पहाड़ टूटते रहे, तथापि उन्होंने अपने अध्ययन की ओर कभी दुर्लक्ष्य नहीं किया। प्रत्येक परीक्षा में वह अपनी विशेष प्रतिभा का परिचय देते रहे। प्राथमिक बोर्ड की परीक्षा में तो वह सर्वप्रथम थे ही, किन्तु हाईस्कूल में अजमेर बोर्ड की परीक्षा में उन्होंने सभी रिकॉर्ड तोड़ दिए। उनकी रेखागणित की उत्तर-पुस्तिका कई वर्षों तक नमूने के तौर पर सुरक्षित रखी गयी। इसी प्रकार पिलानी के बिड़ला कॉलेज़ में अध्ययन करके उन्होंने इण्टर की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। महाराजा सीकर एवं घनश्यामदास बिड़ला– दोनों ने ही उन्हें विशेष पुरस्कार एवं छात्रवृत्ति प्रदान की। बिड़ला जी व महाराजा– दोनों उन्हें अपने यहाँ अच्छी नौकरी देना चाहते थे। किन्तु दीनदयाल ने सनातन धर्म कॉलेज़, कानपुर जाकर गणित विषय लेकर बीए की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यद्यपि

यद्यपि पं. दीनदयालजी इतने अच्छे स्वभाव के थे कि उन्हें 'अजातशत्रु' (जिसका कोई शत्रु नहीं) कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी, तथापि वे भारतीय राजनीति को भी एक विशेष दिशा में मोड़ देने के लिए प्रयत्नशील थे और उसमें उन्होंने बहुत सफलता भी प्राप्त की थी, इसी राजनीतिक विचारधारा में उनके विरोधियों से उनका उभरता हुआ व्यक्तित्व नहीं सहा गया।

उन्होंने एम.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया था, किन्तु दुर्भाग्यवश एम.ए. द्वितीय वर्ष की परीक्षा अपनी बीमार बहन की सेवा में रहने के कारण नहीं दे सके।

अपनी मामी के आग्रह पर वह एक बार प्रशासनिक सेवा की प्रतियोगिता में भी शामिल हुए और उनका चुनाव भी हो गया। लेकिन उन्होंने विदेशी सरकार की नौकरी न करने का निश्चय किया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने बी.टी. का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

कार्यकर्ता के रूप में

गरीबी के होते हुए भी दीनदयाल ने नौकरी न करके देशसेवा का ही व्रत लिया और वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक के रूप में देशसेवा का कार्य करने निकल पड़े। थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी स्वभावगत महानता और कार्य-कुशलता के कारण सभी को प्रभावित किया। तीन वर्ष में ही वह उत्तरप्रदेश के सह प्रांत प्रचारक बना दिए गये।

साहित्यिक सेवाएँ

दीनदयाल जी प्रखर बुद्धि के धनी थे। अतएव उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में **सम्राट् चंद्रगुप्त** एवं **जगद्गुरु शंकराचार्य** नामक दो पुस्तकें लिखीं। विषय-प्रतिपादन तथा शैली– दोनों ही दृष्टि से ये पुस्तकें बहुत उत्तम हैं। इन्होंने लखनऊ में ही **राष्ट्रधर्म प्रकाशन** नामक संस्था भी स्थापित की। **राष्ट्रधर्म** मासिक, **पांचजन्य** साप्ताहिक तथा **स्वदेश** नामक दैनिक पत्र भी निकाले। आज भी राष्ट्रधर्म एवं पांचजन्य अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्ट पत्रिकाएँ मानी जाती हैं। 'स्वदेश' अब 'तरुण भारत' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। इन सभी पत्रिकाओं के मूल में दीनदयाल जी के गहन विचार एवं उनका सतत् परिश्रम ही है। दीनदयाल जी ने आवश्यकतानुसार इन पत्रों के कम्पोजीटर, मशीनमैन, भारवाहक तथा कार्यालय के चपरासी का काम भी किया। उन्हें इन पत्रों में लिखना भी पड़ता था तथा शेष सामग्री भी देखनी पड़ती थी। दीनदयाल जी गम्भीर विचारक थे, इसलिए उनके भाषणों के आधार पर कई पुस्तकें संकलित करके प्रकाशित की गई हैं, इनमें से प्रमुख हैं– 'भारत अर्थनीति : विकास की एक दिशा', 'राष्ट्र जीवन की दिशा' और 'पॉलिटिकल डायरी'।

एकात्म मानववाद

भारतीय जीवन-दर्शन को वर्तमान सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सारे संसार को नवीन दिशा देने का कार्य दीनदयाल जी ने किया। सुख की दौड़ में सतत् दौड़ रहे मानव को दीनदयाल जी के एकात्म मानववाद से अवश्य ही स्फूर्ति एवं दिशा मिलेगी।

स्वर्गारोहण

यद्यपि पं. दीनदयालजी इतने अच्छे स्वभाव के थे कि उन्हें 'अजातशत्रु' (जिसका कोई शत्रु नहीं) कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी, तथापि वे भारतीय राजनीति को भी एक विशेष दिशा में मोड़ देने के लिए प्रयत्नशील थे और उसमें उन्होंने बहुत सफलता भी प्राप्त की थी, इसी राजनीतिक विचारधारा में उनके विरोधियों से उनका उभरता हुआ व्यक्तित्व नहीं सहा गया और एक दिन अर्थात् 11 फरवरी, 1968 की प्रातः मुगलसराय रेलवे यार्ड में उनकी प्राणहीन शरीर पड़ा मिला। स्पष्ट था कि किसी षड्यंत्र द्वारा कुछ नियोजित हत्यारों ने उनके सतत् गतिमान जीवन का सहसा अन्त कर दिया। जिस समय दीनदयालजी का शव पहचान लिया गया, सम्पूर्ण विश्व में तुरन्त ही यह समाचार फैल गया। देश और विदेश के मनीषियों, नेताओं और विद्वानों ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की। किसी ने ठीक ही कहा है कि देश के गौरवशाली अतीत से भव्य भविष्य को जोड़नेवाला वर्तमान का महान् शिल्पी चिरनिद्रा में सो गया। दीनदयाल जी का कर्मशील जीवन, मधुर किन्तु सरल व्यवहार एवं उनका गहन चिन्तन सदा ही सम्पूर्ण समाज को नयी दिशा प्रदान करता रहेगा।

सामान्य से दिखनेवाले दीनदयाल जी की मृत्यु का समाचार पूरे देश और देश की सीमा लाँघकर विश्वभर में जंगल में लगी आग के समान फैल गया। उनका पार्थिव शरीर अन्तिम दर्शनों के लिए नयी दिल्ली में 30, राजेंद्र प्रसाद रोड पर रखा गया। यह स्थान उस समय के सांसद अटल बिहारी वाजपेयी का निवास था।

देश-विदेशों से शोक-संवेदना प्रकट करनेवालों का ताँता लग गया। 12 फरवरी की प्रातःकाल भारत के राष्ट्रपति जाकिर हुसैन, प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी व उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने स्वयं उपस्थित होकर माल्यार्पण के साथ श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके व्यक्तित्व की विराटता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारतीय संसद ने भी शोक-प्रस्ताव पारित कर श्रद्धांजलि अर्पित की, यद्यपि दीनदयाल जी न सांसद थे, न कभी सांसद रहे थे जबकि संसद की परम्परा अपने वर्तमान व निवर्तमान सदस्यों को ही श्रद्धांजलि देने तक सीमित थी। ■

समस्या नहीं समाधानपरक चिन्तन की ज़रूरत : सुनील आंबेकर

आज जो भी समस्याएँ हमारे सम्मुख विकराल रूप धारण किए खड़ी हैं उन सबके लिए हम स्वयं ज़िम्मेदार हैं। हम अक्सर यह सोचकर खुश हो जाते हैं कि फलां समस्या हमारी नहीं है या इससे मुझे क्या लेना। लेकिन हमारे मन में आए यहीं विचार वर्तमान समस्याओं के जनक हैं। आज़ादी के पूर्व की घटनाओं-समस्याओं के लिए विदेशियों को दोष देते रहे हैं, दे सकते हैं। परंतु स्वतंत्रता के बाद हम किसी को दोष नहीं दे सकते, हर समस्या कि ज़वाबदेही हमारी है। ऐसे में ज़रूरी है कि हम अपनी ज़िम्मेदारियों को समझते हुए समस्या के बजाय समाधान पर ध्यान दें ताकि हमारी ऊर्जा का उपयोग रचनात्मक कार्यों में हो सके।

ये बातें अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय संगठन मंत्री सुनील आंबेकर ने पूर्वोत्तर क्षेत्र के प्राध्यापक-कार्यकर्ता प्रशिक्षण-वर्ग में कहीं। 26 और 27 अगस्त को गुवाहाटी-स्थित युवा विकास केंद्र में हुए इस दो-दिवसीय प्रशिक्षण-वर्ग में आंबेकर ने छात्रों-युवाओं को सही दिशा में प्रोत्साहित किए जाने की ज़रूरत पर बल दिया। उन्होंने कहा कि युवाओं से ही सशक्त देश की कल्पना संभव है। ऐसे में ज़रूरी है कि युवाओं को सही मार्गदर्शन मिले, जिस दिशा में अभाविप सदैव तत्पर है। विद्यार्थी परिषद् का ध्येय-वाक्य भी 'छात्र शक्ति – राष्ट्र शक्ति' है जो युवाओं में विश्वास जगाने का काम करता है।

इस कार्यशाला में पूर्वोत्तर के अभाविप के पाँचों प्रान्तों से प्राध्यापक कार्यकर्ता उपस्थित रहे, जिसमें नागालैण्ड के प्राध्यापक भी शामिल रहे।

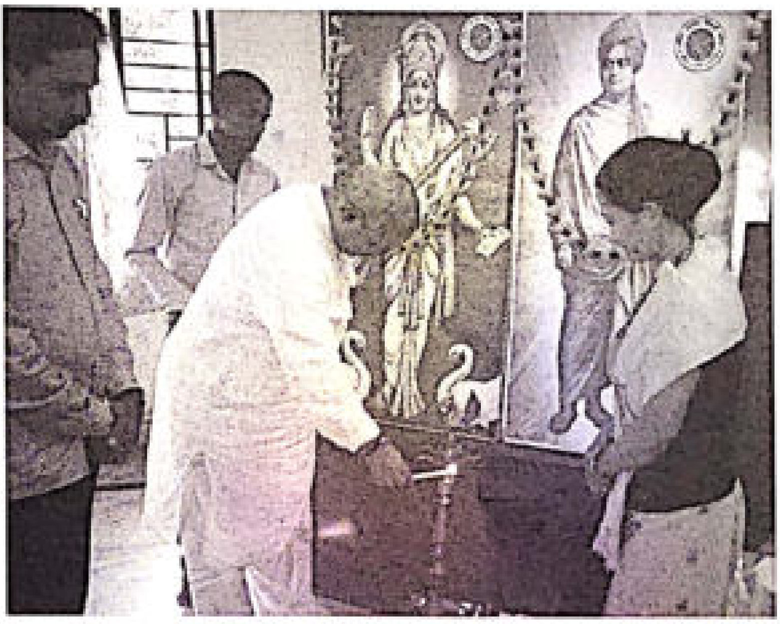

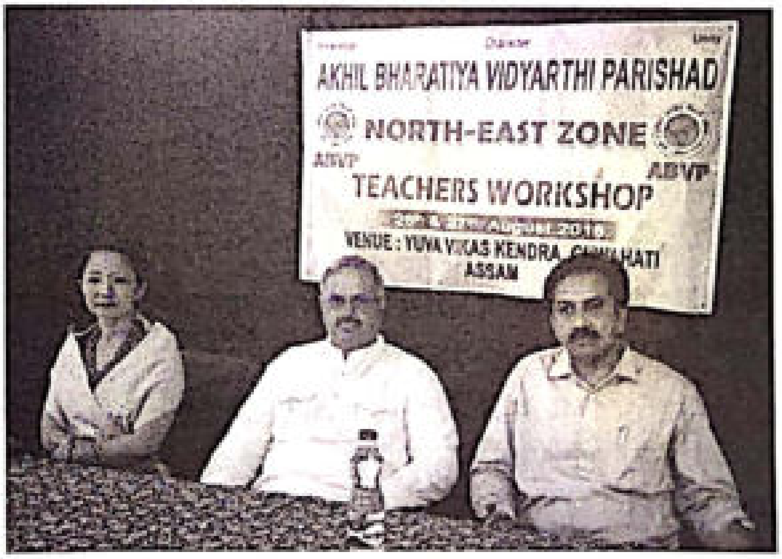

मंच पर उपस्थित (बायें से) श्रीमती अनिया जोराम (प्रदेश अध्यक्ष, अरुणाचलप्रदेश), राष्ट्रीय संगठन-मंत्री श्री सुनील आम्बेकर तथा राष्ट्रीय मंत्री श्री श्रीहरि बोरिकर

प्रशिक्षण-वर्ग के दौरान प्राध्यापक और कार्यकर्ताओं ने अपने-अपने पक्ष रखते हुए युवाओं की उपयोगिता तथा उनके लक्ष्य पर विचार व्यक्त किया। साथ ही, दो-दिवसीय कार्यशाला में विविध विषयों पर सत्र भी हुए जिसमें मुख्यतः पूर्वोत्तर की शैक्षणिक समस्याओं, प्राध्यापक-कार्यकर्ता भूमिका, विद्यार्थी परिषद् और हमारा विचार, एक प्राध्यापक प्रो. यशवंतराव केलकर-जैसे विषयों पर चर्चा हुई। इसके अलावा, लोगों की जज्ञासा और उनके समाधान को लेकर प्रश्नोत्तर का भी क्रम चला। वहीं, परिषद् के कार्य-संतुलन तथा एक नागरिक के तौर जिम्मेदारियाँ आदि मुद्दों पर गहन विचार किया गया।

फिर हुई अभाविप के छात्र हित नीति की जीत

विराट् छात्र -प्रदर्शन के बाद सरकार ने मानी अभाविप की मांगें

वर्तमान समय में मध्यप्रदेश में शिक्षा माफियाओं का राज चल रहा है। यहाँ शिक्षा के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार, व्यापारीकरण एवं निजीकरण को रोकने में सरकार निरंकुश है, जिससे शिक्षा-माफियाओं के हौसले बुलंद हैं। आलम यह है कि प्रदेश सरकार विद्यार्थियों के लिए नहीं अपितु शिक्षा-माफियाओं के हक़ में फ़ैसले दे रही है। विद्यार्थियों की मूल समस्याएँ, जैसे– प्रवेश, परीक्षा एवं परिणाम पर सरकार की सारी नीतियाँ विफल हो चुकी हैं। ऐसे में ज़रूरी था कि सरकार और प्रशासनिक तंत्र को जगाया जाए, जिसके लिए विद्यार्थी परिषद् ने कमर कसी है। परिषद् के इस शंखनाद का ही नतीज़ा है कि प्रदेश-सरकार छात्रों की समस्याओं का निराकरण करने के साथ अभाविप की अन्य मांगों को मानने को तैयार हो गई है।

उक्त बातें अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के राष्ट्रीय महामंत्री विनय बिदरे ने छात्रों को सस्ती एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दिए जाने की मांग को लेकर निकाले गए विराट् प्रदर्शन के पश्चात् कहीं। इस दौरान उन्होंने बताया कि विराट् छात्र-प्रदर्शन के बाद सरकार ने अभाविप की प्रमुख मांगों पर सहमति बना ली है जो दर्शाता है कि एक बार फिर अभाविप छात्र हित की अपनी नीतियों को लेकर विजयी हुई है। 21 सितंबर, 2016 को निकले इस विराट् छात्र-प्रदर्शन में 51 ज़िलों के करीब तीस हज़ार छात्र शामिल हुए। इस आंदोलन की ख़ास बात यह रही कि प्रशासनिक अधिकारियों ने भी परिषद् के अनुशासनपूर्वक संघर्ष की सराहना की।

आंदोलन प्रदेश-संयोजक एवं अभाविप के प्रदेश मंत्री रोहित राय ने कहा कि छात्र संघ चुनाव पुनः शुरू करने एवं स्नातक में सेमेस्टर-पद्धति खत्म करने का फ़ैसला सराहनीय है। मध्यप्रदेश की शिक्षा-व्यवस्था में ऐतिहासिक परिवर्तन लाने में ये फ़ैसले काफ़ी अहम् भूमिका अदा करेंगे। उन्होंने बताया कि आंदोलन में सरकार के उच्च शिक्षा मंत्री जयभान सिंह ने प्रदर्शन-स्थल आकर छात्रावास, छात्रवृत्ति एवं प्रवेश की प्रक्रिया को सरलीकरण करने जैसी मांगों की भी घोषणा की। इसके अतिरिक्त अभाविप द्वारा अलग-अलग पाठ्यक्रम की मांगों के बाबत उच्च शिक्षा मंत्री ने विद्यार्थी परिषद् के प्रतिनिधिमण्डल को संबंधित विभाग के मंत्रियों के साथ विषय-बिंदु पर चर्चा हेतु आमंत्रित किया।

भोपाल में आयोजित पूर्व कार्यकर्ता सम्मेलन को सम्बोधित करते
राष्ट्रीय संगठन-मंत्री श्री सुनील आम्बेकर

दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ चुनाव में अभाविप की 4 में से 3 प्रमुख पदों पर जीत

एकात्म मानवतावाद दर्शन के प्रवर्तक
पंडित दीनदयाल उपाध्याय
को
जन्मशती पर कोटिशः नमन्
25 सितम्बर, 2016
आइये,
पंडित दीनदयाल उपाध्याय के
जन्म शताब्दी वर्ष पर
हम समतामूलक, समरस और
शुचितापूर्ण समाज के निर्माण के प्रति
स्वयं को समर्पित करें।
"हम किसी विशेष समुदाय या वर्ग की नहीं,
संपूर्ण देश की सेवा के लिए प्रतिबद्ध हैं,
हर देशवासी हमारे रक्त का रक्त
और हमारी मज्जा की मज्जा है,
हम तब तक चैन की सांस नहीं लेंगे
जब तक कि हम हर एक को
गर्व का यह बोध दे सकें
कि वे भारतमाता की संतान हैं."
पं. दीनदयाल उपाध्याय
शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
मध्यप्रदेश
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : मध्यप्रदेश माध्यम/2016

RNI 32464/78